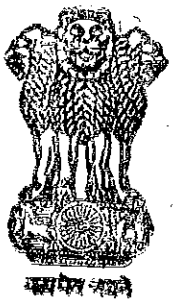

भारत का विधि आयोग

की

अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन पर

116वीं रिपोर्ट

नवम्बर, 1986

49.54K
M6.116,1

भारत का विधि आयोग की अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन पर 116वीं रिपोर्ट का शुद्धिपत्र :—

पृष्ठ सं०	पैरा	पंक्ति	के स्थान पर	पढ़ें
(i)	2	6	सृजना के	सृजन के
(i)	4	2	जिसके	जिसके
1	1	1	"मद मद संख्या 9"	"मद संख्या 9"
2	1.3	5—6	से पूर्ण रूपेण जानकार होने चाहिए	की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए,
2	1.3 दूसरा पैरा	1	के विधि	के विधार्थी
3	2.1	2	उसमें	उसके
3	2.1	1	अध्याय—II	अध्याय—2
3	2.1	17	कार्ययालिका	कार्यपालिका
3	2.1	19	बराबर	बरकरार
4	पाद टिप्पण—1	1	कंस्ट्यूशन	कांस्टीट्यूशन
6	2.6	1	संविधवान निधेयक (चालिसवां संशोधन) 1976	संविधान (चवालीसवां संशोधन) विधेयक, 1976
6	2.6	4	डाए गए थे ।	डाले गए थे ।
6	2.8	3	समान केवल	शामलाती केवल
6	2.8	4	अखिल भारतीय सेवा अधिनियम (संशोधन) 1962	अखिल भारतीय सेवा (संशोधन) अधिनियम, 1962
6	2.9	2	संविधान संशोधन अधिनियम (42वां संशोधन) 1976	संविधान (42वां संशोधन) अधिनियम, 1976
7	2.9 (312(4))	1	सृजन लिए	सृजन के लिए
8	3.1	19	द्वारा संगठित	द्वारा इस संगठित
10	क-भाषा की समस्या	13	में निष्पात	में निष्णात
11	दूसरा पैरा	26	की जा सकती है	किया जा सकता है
11	दूसरा पैरा	29	प्रस्तावित प्रशिक्षण	प्रस्तावित साधन प्रशिक्षण,
12	पहला पैरा	3	श्रेणी का	श्रेणी के
12	"	25	सहता है ।	सकता है ।
13	पाद-टिप्पण—2	1	ए०आई० 1970]	ए०आई०आर० 1970
14	3.5 का तीसरा पैरा	3	का ह्रास	का ह्रास
14	3.5 का चौथा पैरा	4	मूलमत	मूलभूत
15	दूसरा पैरा	5	अध्याय 6 भाग 6	भाग 6 के अध्याय 6
15	3.6 शीर्ष "सामान्य जन की आशंकाएं" लुप्त में पढ़ें ।			
15	3.6	6	स्वीकृति	स्वीकृति की
16	3.7 दूसरा पैरा	2	अनुमेलन	आमेदन

डी० ओ० न० एफ 2(6)/85-एल० सी०
नवम्बर 27/1986

श्री अशोक कुमार सेन
विधि एवं न्याय मंत्री
भारत सरकार, शास्त्री भवन
नई दिल्ली

प्रिय विधि एवं न्याय मंत्री

न्यायिक सुधारों के संदर्भ में विचारणीय विषयों में से (मद संख्या 9) अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन विषय पर विधि आयोग की 116वीं रिपोर्ट आपके पास भेजते हुये मुझ अत्यन्त प्रसन्नता है।

आपके दिनांक 17 फरवरी, 1986 के पत्र में जैसी इच्छा व्यक्त की गयी थी, जिसमें आपने शासन के निर्णय की सूचना दी थी कि वर्तमान विधि आयोग द्वारा न्यायिक सुधारों की संस्तुति को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिये, तदनुसार ही विधि आयोग ने अपनी कार्ययोजना का पुनर्निधारण किया है। पहली रिपोर्ट में ग्रामीण वादों पर, दूसरी रिपोर्ट में कर संबंधी वादों के न्यायालयों की पुर्नरचना पर विचार किया गया है। प्रस्तुत रिपोर्ट अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजना के संबंध में है। इस रिपोर्ट के तुरन्त बाद ही विधि आयोग आशा करता है कि न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण की विस्तृत योजना (मद संख्या 6) की संस्तुति की रिपोर्ट अग्रेषित की जाएगी।

मुझे ऐसा बताया गया था कि भारत सरकार आधारभूत न्यायिक सुधार करने की बहुत इच्छुक है। अतः पहले दी गई रिपोर्ट और प्रस्तुत रिपोर्ट भारत सरकार को न्यायिक सुधार के लिये समग्र विधि के विधायन के लिये पर्याप्त सामग्री प्रदान करती है।

मुझे आशा है कि यह रिपोर्ट संसद के समक्ष अविलम्ब रखी जाएगी और मुद्रित कराकर प्रसारित की जाएगी जिससे क्रियान्वयन के लिये ठोस उपाय किये जा सकेंगे।

सादर।

आपका

ह०/-
(डी०ए० देसाई)

1	2	3	4	5
16	3.7 तीसरा पैरा	7 और 8	यथास्थिति वाली सोच का	यथापूर्व स्थिति का
18	अध्याय-4 का शीर्ष "सकारात्मक पहुंच" रूप में पढ़ें ।			
18	4.1 (क)	5	हुस	ह्रास
18	4.1 (ग)	3	होने वाली	होने वाले
19	4.2	10	नहीं होए	नहीं होंगे
19	4.4	11	हो जाएंगो	हो जाएंगे
20	4.4	3	भरण दिन	मरण दिन
20	4.4	7	सुर्वमान्य	सर्वमान्य
20	4.4	12	प्रणिशित	प्रशिक्षण
25	5.4	20	बनाए रखे हैं	बनाए गए हैं ।
25	5.4	41	66 2/3% प्रोन्नति और 33 1/3%	66⅔% प्रोन्नति और 33⅓%
26	5.5	25	कि इसे	कि इससे
27	5.5	2	प्रणशा	प्रशंसा
27	5.6	11	दुर्भाव यह	दुर्भाव के यह
27	5.7	2	व्यवसाय कम	व्यवसाय में कम
27	5.7	2	कां हो ।	का अनुभव हो ।
28	5.8 दूसरा पैरा	1	सेवा नहीं	सेवा ही नहीं
31	5.10	4	वेतन न	वेतनमान
32	5.11	15	साम्यापूण	साम्यापूर्ण
33	5.13 दूसरा पैरा	9	न करिब	ने करीब
33	5.13 " "	25	वरीष्ठ	वरिष्ठ

PARLIAMENT LIBRARY
Central Govt. Publications)
Acc. No. 19719(2).
Date 1/12/1989

MGIPCBE—S7—2 M of L&J/87—1-12-88—210.

विषय सूची

अध्याय 1—भूमिका/परिचय 1–2

अध्याय 2—ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 3–7

अध्याय 3—अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के प्रयत्न और उस पर विचार . 8–17

अध्याय 4—सकारात्मक पहुंच 18–20

अध्याय 5—भारतीय न्यायिक सेवा के गठन का औचित्य . . . 21–35

अध्याय 6—कठिनाइयों का निराकरण 36–37

अध्याय 1

परिचय

1.1 भारत सरकार ने देश में प्रचलित न्याय प्रशासन में आधार भूत सुधारों को लाने के प्रश्न को उच्च प्राथमिकता दी थी। तदनुसार विधि आयोग से न्यायिक सुधारों से सुसंगत अनेक पक्षों पर विस्तृत और समग्र प्रस्ताव रखने की प्रार्थना की गई थी। विधि आयोग को न्यायिक सुधारों के संदर्भ से सुसंगत विचारणीय विषयों में से एक विषय—"मद संख्या 9" अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का सृजन सुपुर्द किया गया था। यह समनुदेशन विधि आयोग को 17 फरवरी, 1986 को प्राप्त हुआ था, जिसके साथ यह प्रार्थना भी की गयी थी कि विचारणीय विषयों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाए और यथा संभव प्रत्येक विचारणीय विषय पर अलग-अलग रिपोर्ट शीघ्र दी जाए। शीघ्र कार्य किए जाने की चिंता प्रशंसनीय है। न्यायिक प्रशासन में आधार भूत और विस्तृत सुधारों के सम्बन्ध में जब भी पूछ ताछ की गई सरकार की ओर से इसके अधिकृत प्रवक्ता ने यही बताया कि यह कार्य विधि आयोग को सुपुर्द किया गया है और विधि आयोग इस कार्य को सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर निबटा भी रहा है। इस रिपोर्ट के अतिरिक्त भी वर्तमान विधि आयोग ने अपनी 114 वीं रिपोर्ट में, जो भारत सरकार को 12 अगस्त, 1986 को दी गई थी, न्यायिक प्रक्रिया की वर्तमान स्थिति पर विचार किया है और विधि आयोग को न्यायिक सुधारों के लिए व्यूह रचना तथा सुभिन्न क्षेत्रों पर विस्तृत विचार और प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ। यह क्षेत्र यद्यपि सुभिन्न हैं: किन्तु कार्य रूप में लाने पर ऐसी आशा की जाती है, इनका संचित प्रभाव यह होगा कि न्याय प्रणाली जो मृत प्राय सी लगती है पुनर्जीवित हो सके और इसमें लचीलापन आ सकेगा तथा न्याय देश के निर्धनतम व्यक्ति को सरलता से प्राप्त हो सके जिससे यह प्रणाली परिणामप्रद, अनौपचारिक और अव्यवसायिक हो जाए।

1.2 विधि आयोग का यह निश्चित मत है कि न्यायालय प्रणाली अन्ततः समाज में उत्पन्न होने वाले विवादों को हल करने की मशीनरी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। भारतीय समाज का परिदृश्य एक दम ग्रामीण से लेकर अत्यन्त विकसित औद्योगिक समाज तक विस्तृत है। इनके मध्य अन्य अनेक स्तर हैं। सामान्य बुद्धि का तकाजा है कि अत्यन्त दुरुह विवादों को हल करने वाली मशीनरी का ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाले सरल और छोटे-छोटे विवादों को हल करने में उपयोग करना विपरीत परिणाम देगा। किन्तु दासता के दिनों में लादा गया अखंडित ब्रिटिश न्यायिक तंत्र बिना किसी अवगम्य परिवर्तन के समाज के सभी स्तरों पर आज भी कार्य कर रहा है। दृष्टांत के लिए, महानगरों में उत्पन्न विवाद जिसमें दुरुह विधिक औपचारिकताएं, और उलझे हुए तथ्य हों, निबटाने के लिए अत्यन्त विकसित न्याय प्रणाली आवश्यक होगी, किन्तु वही न्याय प्रणाली ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पन्न सरल विवादों को हल करने के लिए अनुपयुक्त होगी क्योंकि वहां बिना समय, धन और शक्ति का अपव्यय किए विवादों का निबटारा आवश्यक होता है। प्रथम पग के रूप में विधि आयोग ने ग्रामीण क्षेत्रों, अर्ध शहरी, शहरी और महानगरों में उत्पन्न होने वाले विवादों की प्रकृति के बारे में तथ्य संग्रह किए हैं। ग्रामीण जनसंख्या की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विधि आयोग ने उनके मध्य होने वाले छोटे मोटे विवादों के समाधान के लिए सरल मशीनरी प्रदान करने हेतु कार्यकारी पत्र तैयार किया था, जिसमें ग्राम न्यायालयों के पुनर्जीवन की बात कही गई थी जो अव्यवसायिक हो तथा कम औपचारिक हो जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों के सरल विवाद निपटाए जा सकें। वर्तमान विधि आयोग का इस कठिन प्रश्न को हल करने का प्रथम प्रयास होने के कारण इस प्रश्न पर राष्ट्रीय चर्चा चलाने का प्रयत्न किया गया, जिससे सभी प्रमुख संबद्ध हितों के विचार और आलोचनाएं एकत्रित की जा सकें और उस आधार पर सभी के विचारों को ध्यान में रखते हुए समग्र रिपोर्ट प्रस्तुत की जा सके। स्थानीय अकादमियों, बार संघों, विश्वविद्यालयों और विधि कालेजों के सहयोग से देश के प्रत्येक भाग में कार्यशालाओं का आयोजन किया गया। इन कार्यशालाओं में हुई विशद चर्चाओं का लाभ उठाते हुए विधि आयोग ने

अध्याय 2

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

2.1 एक बड़ी सीमा तक गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ऐक्ट, 1935 स्वतंत्र भारत के संविधान की रचना में प्रादर्श रूप में स्वीकार किया गया है। उसमें भाग-9 में न्याय प्रणाली की चर्चा थी। भाग-9 का अध्याय-1 संघ न्यायालय की संरचना और अधिकारिता और संघ न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की चर्चा करता है। भाग-9 अध्याय-11 के उपबंध ब्रिटिश भारत के उच्च न्यायालयों की संरचना, अधिकारिता, कार्य और कर्तव्यों की चर्चा करता है। यद्यपि भाग-9 न्याय प्रणाली से संबंधित था फिर भी उच्च न्यायालय से अवर सेवाओं की उसमें कोई चर्चा नहीं है। भाग 10 में भारत में सम्राट की सेवाओं की चर्चा है। भाग-10 के अध्याय-2 में धारा 254, 255 और 256 में न्यायिक अधिकारियों के संबंध में विशेष उपबंध उपशीर्षक के अन्तर्गत अधीनस्थ न्यायपालिका की चर्चा की गई है। धारा 254 में जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति का उपबंध है और यह संविधान के अनुच्छेद 233 (1) के समरूप है। धारा 254 (2) संविधान के अनुच्छेद 233 (2) के समरूप है अन्तर केवल इतना है कि बार के वरिष्ठ और अनुभवी सदस्यों में से जिला न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होने के लिए कम से कम पांच वर्षों का विधि व्यवसाय अर्हता प्रदान करने के लिए आवश्यक था, जबकि संविधान में यह न्यूनतम अर्हता 7 वर्षों के लिए कर दी गई है। धारा 254 (3) को ज्यों का त्यों संविधान के अनुच्छेद 236 (क) में रख दिया गया है। धारा 255 अधीनस्थ मजिस्ट्रेटों से संबंधित थी। गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ऐक्ट, 1935 के निर्माताओं ने कार्यपालिका को न्याय पालिका से विभाजन के प्रति अपनी अरूचि दिखाई थी और दांडिक मजिस्ट्रेसी पर कार्य पालिका की जकड धारा 255 के उपबंधों के अधीन बराबर रखी गई थी। प्रादेशिक सेवा आयोग को अधीनस्थ सिविल न्यायालयीय सेवा में चयन के लिये एक-एक भूमिका दी गयी थी। प्रदेशीय विधायी सूची 2 में प्रविष्टि 2 के द्वारा राज्यों को संघ न्यायालय के अतिरिक्त अन्य सभी न्यायालयों को अधिकारिता और शक्ति प्रदान करने की विधायिका और कार्य पालिका के अधिकार दिए गए थे। संविदान में इस संबंध में अन्तर किया गया है, जिसके द्वारा अधीनस्थ न्यायपालिका में बाह्य हस्तक्षेप से बचाव किया गया है। उच्च न्यायालय को बार से सीधे जिला न्यायाधीशों के काडर में नियुक्ति ही नहीं वरन् अधीनस्थ पदों से जिला न्यायाधीश के काडर में प्रोन्नति के बारे में भी निर्णयात्मक भूमिका दी गई है। जिला न्यायाधीश से अवर न्यायिक सेवा में नियुक्ति के मामलों में भी उम्मीदवारों के चयन की शक्ति राज्य लोक सेवा आयोग को प्रदत्त की गई जैसा कि गवर्नमेन्ट आफ इंडिया ऐक्ट, 1935 की धारा 255 में प्रदत्त था। नियुक्ति के पूर्व उच्च न्यायालयों से विचार विमर्श करना बाध्य कर बना दिया गया। अनुच्छेद 235 के द्वारा पूर्व स्थिति से विनिर्दिष्ट भिन्नता जिला न्यायालयों और उसके अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण उच्च न्यायालय को देकर की गई है। यह नियंत्रण अब पूर्ण व्यापक है। यह आगे निर्दिष्ट होगा।

2.2 सेवाएं जिसे राज्य सेवाओं के सचिव की सेवाओं के रूप में जाना जाता है (जैसे भारतीय सिविल सेवा और भारतीय पुलिस सेवा) स्वतंत्रता के आगमन के साथ ही समाप्त हो जाने वाली थी[1]। अन्तरिम सरकार ने इन सेवाओं को स्थानापन्न करने वाले वैकल्पिक सेवाओं को तैयार करने के प्रयास किए। इस प्रश्न पर कि न्यायिक सेवाएं अखिल भारतीय आधार पर गठित की जाए अथवा इन्हें राज्यों द्वारा गठित किया जाना चाहिए, 1946 में प्रान्तीय प्रधानमंत्रियों की सभा में विचार किया गया। इसकी अध्यक्षता तत्कालीन गृहमंत्री स्व० सरदार बल्लभ भाई पटेल ने की थी।

---

1. धारा 10, इंडियन इंडिपेन्डेन्स ऐक्ट, 1947।

मूलगामी स्तर पर न्याय प्रणाली की पुनर्रचना के लिए विचार भी आमंत्रित किए। उसमें एक पक्ष यह भी था कि अखिल भारतीय न्याय सेवा भी निर्मित हो।

1.3 जिला न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों का नियंत्रण राज्य के उच्च न्यायालय में निहित है। इस नियंत्रण की सीमा, विस्तार और अभिप्रेत अनेक न्यायिक निर्णयों की विषय-वस्तु रही है। यह नियंत्रण सर्व व्यापी रहा है। अतएव ऐसा अनुभव किया गया कि भारत के मुख्य न्यायाधीश और न्यायाधीशगण, उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशगण और न्यायाधीशों को अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना की स्कीम से पूर्ण रूपेण जानकार होने चाहिए, जिससे वे विधि आयोग की इस संबंध में सहायता कर सकें। इस विस्तृत क्षेत्र की इस विषय से संबंधित प्रश्नों पर सुविचारित राय जानने के लिए आयोग ने देश में कार्यरत प्रत्येक उच्च न्यायालय के प्रत्येक मुख्य न्यायाधीश और न्यायाधीश को व्यक्तिशः व्यक्तिगत पत्र लिखे। भारत के मुख्य न्यायाधीश को भी एक विस्तृत पत्र लिखा गया। ऐसे प्रत्येक पत्र के साथ न्यायिक सुधारों के संदर्भ में अध्ययन हेतु विचारणीय विषयों की प्रति भी भेजी गयी। प्रत्येक न्यायाधीश से सभी या किसी एक विचारणीय विषय पर अपना मत और सुझाव भेजने की प्रार्थना की गई थी, किन्तु उसमें मद संख्या-9 जो अखिल भारतीय न्यायिक सेवा से संबंधित थी, पर विनिर्दिष्ट विचार देने की प्रार्थना की गई थी। यह जानकर बहुत उत्साहवर्धन हुआ है कि दैनंदिन कार्यों में अत्यन्त व्यवस्था के बावजूद अनेक उच्च न्यायालयों से बड़ी संख्या में न्यायाधीशों ने आयोग के पत्र का उत्तर दिया है। भारत के मुख्य न्यायाधीश, कुछ उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों और कुछ उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से विस्तृत चर्चाएं भी हुईं। यह दुख की बात रही कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के संबंध में यह बात नहीं कही जा सकती है।

आयोग ने भारत सरकार के विधि और न्याय मंत्रालय के विधि विभाग के अधिकारियों से भी चर्चाएं की हैं। उन्होंने इस संबंध में राज्य सरकारों, संघ शासित क्षेत्रों से एकत्र सूचनाओं तथा पहले के मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलनों में पारित संकल्पों की जानकारी दी। उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों के मतों का सारांश भी आयोग को दिया गया।

भारतीय विधि संस्थान में जहां गवर्निंग कौंसिल के सदस्य और कुछ चुने हुए अतिथि उपस्थित थे उनसे भी बातें करने के लिए आयोग को आमंत्रित किया गया था। इन चर्चाओं से इस समस्या के अनेक आयामों पर नया प्रकाश प्राप्त हुआ। आयोग डा० उपेन्द्र बक्शी, निदेशक (शोध) भारतीय विधि संस्थान द्वारा इस संबंध में किए गए प्रयासों और पहल की विशेष रूप से प्रशंसा करता है।

न्यायालय से विचार विमर्श किया जाना था। नियंत्रण, शब्द उसमें नहीं था। संविधान लागू होने के पश्चात् नियंत्रण, शब्द में जैसा बाद में विस्तृत चर्चा की जाएगी बहुत ही परिवर्तन कर दिया। इस विषय से सुसंगत उपबन्धों पर कोई भी परिचर्चा नाम मात्र की भी नहीं हुई थी ।

जब अनुच्छेद 312 के पूर्वगामी अनुच्छेद 282 पर परिचर्चा प्रारम्भ हुई तब इस प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया गया कि न्यायिक सेवाओं को अखिल भारतीय स्तर पर गठन किया जाना चाहिए। उस समय ध्यान देने का विषय था कि यदि प्रस्ताव यथा आवश्यक बहुमत के साथ राज्य सभा द्वारा पारित कर दिया जाता है तो क्या संसद किसी सेवा को अखिल भारतीय आधार पर सृजित कर सकता है? चर्चा का उत्तर देते हुए डा० अम्बेदकर ने कहा :

"अनुच्छेद 282 इस प्रतिपादन पर आधारित है कि केन्द्र को इसके अधीन सेवाओं की भरती करने का अधिकार होगा और प्रत्येक राज्य स्वतंत्र होगा कि वह अपने अधीन सेवाओं की भरती करे और उनकी सेवा शर्तों का भी निर्धारण करे। अतः हमने अनुच्छेद 282 के द्वारा पूर्ण अधिकारिता प्रदान कर दी है। अनुच्छेद 282ग कुछ सीमा तक अनुच्छेद 282 द्वारा राज्यों को प्रदत्त स्वायत्तता पर आक्षेप करता है और स्पष्टतः यदि इस स्वायत्तता का अपहरण केन्द्र द्वारा बाद में किया जाना है तो इसे कुछ अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए और इसके लिए केवल एक ही उपाय हो सकता है, जिससे केन्द्र राज्य की स्वायत्तता में हस्तक्षेप कर सके वह उपाय है अनुच्छेद 282 जिसके अधीन राज्य सभा का दो तिहाई का बहुमत प्राप्त किया जाए। ऊपरी सदन ही अनुच्छेद 282 में उल्लिखित है। यह इस धारणा पर आधारित है कि ऊपरी सदन राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है। अतः उसके प्रस्ताव का यह अर्थ होगा कि यह अधिकार राज्यों द्वारा दिया गया है। यही कारण है जिससे ये शब्द अनुच्छेद 282 ग में स्थान दिए गए हैं[1]।

2.4 यद्यपि हमारा संविधान चरित्र में अर्थ संघीय है फिर भी सेवाओं में दोहरापन, एक राज्यों के लिए और दूसरा संघ के लिए स्पष्ट रूप से स्वीकार्य नहीं हुआ। यहां तक कि दो प्रमुख सेवाएं भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा यद्यपि अखिल भारतीय स्तर पर सृजित की गई इसके सदस्यों को राज्यों के लिए आबंटन किया गया। संघ सरकार को इसके सदस्यों का कोई आबंटन नहीं था। राज्यों को आबंटित सदस्यों में से संघ सरकार को उसकी आवश्यकतानुसार सेवा के लिए प्रत्यायोजन किया जाना था। साधारणतया राज्यों और संघ सरकार की सेवा के लिए समान सेवा का गठन अखिल भारतीय स्तर पर किया जाना चाहिए। संसद को अखिल भारतीय सेवा के गठन की शक्ति दिए जाने के लिए तद्उपयुक्त उपबंध अनुच्छेद 312 के रूप में अधिनियमित किया गया। यदि मोटे तौर पर देखा जाए तो अनुच्छेद 312 की शर्तें पूरी कर दी जाती हैं तो संसद कानून द्वारा अखिल भारतीय सेवा जो राज्य और संघ सरकार के लिए समान हो, का सृजन कर सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायिक सेवाओं के अखिल भारतीय स्तर पर सृजन के प्रश्न पर कुछ संदेह है।

2.5 स्वर्ण सिंह समिति 1976 ने अखिल भारतीय स्तर पर न्यायिक सेवाओं के सृजन के प्रश्न पर विचार किया। अपना कोई अभिमत बिना प्रकट किए हुए इसने अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन की समस्या को सरकार के पास विचारार्थ और राज्य सरकारों की सलाह के उपरान्त निर्णय के लिए भेज दिया। न्यायिक सेवाओं का सृजन अखिल भारतीय स्तर पर किया जाना चाहिए अथवा नहीं इस प्रश्न पर अपना मत देते हुए विधि आयोग के अध्यक्ष ने अपनी व्यक्तिगत आशंका प्रकट की[2] थी कि शायद ही कोई

---

1. द कांस्टिट्यूएन्ट एसेम्बली डिबेट्स भाग 9ख पृष्ठ 1118।
2. श्री पी० बी० गजेन्द्र गडकर, चेयरमैन, विधि आयोग ने अपना अभिमत अपनी व्यक्तिगत हैसियत से दिया था।

इस सभा में निश्चय किया गया कि अधीनस्थ न्यायिक सेवाओं का गठन प्रान्त की सरकारों द्वारा किया जाना चाहिए। सभा का मत था कि अधीनस्थ न्यायपालिका को अखिल भारतीय स्तर पर गठित करने की कोई आवश्यकता नहीं है विशेषत: उन प्रादर्शों पर गठित करने की जिन आधारों पर वर्तमान सिविल सेवाओं के स्थान पर अखिल भारतीय सेवाएं गठित करना है। इस सभा के निर्णय को प्रभावित करने वाले दो तत्व थे। स्वतंत्रता के आगमन तक भारतीय सिविल सेवाओं के लिए एक कोटा निर्धारित था, जिसे जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जाना था और यही बाद में उच्च न्यायालय के लिए प्रोन्नत कर दिए जाते थे। यह कार्य पालिका को न्याय पालिका से पूर्णत: विलग न करने की एक चाल थी। निःसंदेह जब राज्य के सचिव की सेवाएं समाप्त हो गई हैं और उनका स्थान भारतीय प्रशासनिक सेवाओं और भारतीय पुलिस सेवाओं ने क्रमश: ले लिया तब एक नीति गत निर्णय लिया गया कि भारतीय प्रशासनिक सेवा का व्यक्ति न्यायिक पदों के लिए नहीं नियुक्त किया जाएगा, यद्यपि जो नियुक्त हो गए थे, उन्हे वापस नहीं बुलाया गया। स्वतंत्र भारत में न्याय पालिका को कार्य पालिका से अलग करने की यह शुरुआत थी। यह स्मरणीय है कि स्वतंत्रता आंदोलन के समय कार्य-पालिका को न्याय पालिका से अलग करने की मांग प्रमुख राष्ट्रीय मुद्दा था, जिसकी संविधान के अनुच्छेद 30 में पुष्टि की गई है। किन्तु इसके बावजूद भी थोड़े बहुत अन्तर के साथ अधीनस्थ न्यायपालिका के लिए धारा 254 से 256 में दिया आदर्श स्वीकार्य समझा गया। अत: संविधान के भाग 6 अध्याय--6 में इसे पुन: प्रतिष्ठित कर दिया गया।

2.3 न तो 1947 में संविधान परामर्शी द्वारा प्रस्तुत संविधान के प्रारूप में और न ही प्रारूपण समिति द्वारा 1948 में प्रस्तुत प्रारूप में अधीनस्थ न्याय पालिका के लिए कोई विनिर्दिष्ट उपबन्ध हैं[1]। इस भूल की ओर संघ न्यायालय के न्यायाधीशों और प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों की मार्च 1948 में सम्पन्न सभा में ध्यान दिया गया और उसका उल्लेख भी हुआ। उनके स्मरण पत्र में कहा गया—

"जब तक अधीनस्थ न्यायपालिका जिसमें जिला न्यायाधीश भी सम्मिलित है, अपनी नियुक्ति, तैनाती, प्रोन्नति और अवकाश के लिए प्रान्तीय कार्यपालिका पर निर्भर है तब तक वे शासन में बैठे दल के सदस्यों के प्रभाव से पूर्णत: मुक्त नहीं हो सकते हैं और उनसे यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे पूर्णत: निष्पक्ष और स्वतंत्र रूप से अपने कर्तव्यों का निर्वाह कर सकेंगी। अत: यह संस्तुति की जा रही है कि इस प्रकार उपबन्ध बनाए जाएं कि यह कार्य अनिवार्य रूप से उच्च न्यायालयों के हाथ में सौंप दिया जाए जिससे पूरी अधीनस्थ न्यायपालिका जिसमें जिला न्यायाधीश भी सम्मिलित हैं, की नियुक्ति और पदच्युति, तैनाती, प्रोन्नति, और अवकाश देने की शक्तियां उसे प्राप्त हो जाएं"[2] ।

प्रारूप समिति ने यह संस्तुति स्वीकार कर ली थी। यह मत प्रकट किया गया कि न्याय की दो शाखाएं सिविल और दांडिक मिला दी जाएं और दोनों को समान रूप से उच्च न्यायालय के नियंत्रण में रख दिया जाए[3] । मामला वहीं रहा। अधीनस्थ न्यायपालिका से संबंधित उपबन्धों पर चर्चा करीब नौ माह बाद सितम्बर 6, 1946 में हुई। डा० अम्बेदकर ने अनुच्छेद 209 (क) से 209 (छ) की प्रस्तावना की। उसमें दांडिक मजिस्ट्रेसी पर उच्च न्यायालयों के नियंत्रण का कोई उपबन्ध नहीं था। डा० अम्बेदकर ने यह स्वीकार किया कि उनके द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेदों में कोई क्रांतिकारी बात नहीं थी। 1935 के अधिनियम में भी सिविल न्यायपालिका की नियुक्ति और नियंत्रण का अधिकार उच्च न्यायालय में निहित था। जैसा पूर्व में निर्दिष्ट है, धारा 254 की भाषा से पता लगेगा कि नियुक्ति की शक्ति राज्यपाल को प्रदत्त की गई थी। यह उसके व्यक्तिगत निर्णय पर आधारित था और इस शक्ति का उपयोग करने के पूर्व उच्च

---

1. बी० शिवाराव : द फ्रेमिंग आफ इंडियन कांस्ट्यूशन अस्टडी पृ० 508।
2. उपर्युक्त।
3. उपर्युक्त।

1976 द्वारा किया गया जिसमें अखिल भारतीय न्यायिक सेवा भी अन्तर्विष्ट कर दी गई। उद्धरण की सुविधा के लिए इसे यहां उधृत कर दिया जा रहा है :

312 "अखिल भारतीय सेवाएं—(1) भाग 6 के अध्याय-6 या भाग 11 में किसी बात के होते हुए भी यदि राज्य समान उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों में से कम से कम दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा यह घोषित कर दिया है कि राष्ट्रीय हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो संसद विधि द्वारा संघ और राज्यों के लिए एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन के लिए उपबन्ध कर सकेगी और इस अध्याय के अन्य उपबन्धों के अधीन रहते हुये किसी ऐसी सेवा के लिए भर्ती का और नियुक्त व्यक्तियों की सेवा की शर्तों का विनियमन कर सकेगी।

(2) इस संविधान के प्रारम्भ पर भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के नाम से ज्ञात सेवाएं इस अनुच्छेद के अधीन संसद द्वारा सृजित सेवाएं समझी जाएंगी।

(3) खंड (1) में निर्दिष्ट अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के अन्तर्गत अनुच्छेद 236 में परिभाषित जिला न्यायाधीश के पद से अवर पद कोई नहीं होगा।

(4) पूर्वोक्त अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन लिए उपबन्ध करने वाली विधि में भाग 6 के अध्याय-6 के संशोधन के लिए ऐसे उपबंध अन्तर्विष्ट हो सकेंगे जो उस विधि के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए आवश्यक होंगे और ऐसी कोई विधि अनुच्छेद 368 के प्रयोजनों के लिए इस संविधान का, संशोधन नहीं समझी जाती।"

अनुच्छेद 312 बिना संशोधित हुए भी संघ सरकार को यह योग्यता प्रदान करता है कि वह अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का सृजन कर सके परन्तु उसे राज्य सभा से इसके लिए यथा आवश्यक बहुमत के साथ एक संकल्प पारित कराना पड़ता और उसी के अनुरूप एक कानून इस उद्देश्य के लिए बना दिया जाता। इस संशोधन के द्वारा जो बात असंशोधित अनुच्छेद में अन्तर्निहित थी वह बात स्पष्ट कर दी गई। संविधान के अध्याय-4 भाग 4 (अनुच्छेद 233 से 237) में दिए उपबन्धों के अधीन अनुच्छेद 312 (4) में यह प्रदत्त था कि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के लिए विधि के विनियमन के कारण उपयुक्त अनुच्छेदों में परिवर्तन या संशोधन अनुच्छेद 368 के प्रयोजनों के लिए संविधान में संशोधन नहीं माना जाएगा। अनुच्छेद 236 में यथा परिभाषित जिला न्यायाधीश से अवर किसी पद को अन्तर्विष्ट करने के परिणामस्वरूप यदि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का सृजन किया जाना है तो अनुच्छेद 312 (3) संसद के अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के लिए विधि विनियमन के अधिकार को नियंत्रित कर देता है। यह अनुच्छेद 236 में यथा परिभाषित जिला न्यायाधीश से अवर किसी पद को अन्तर्विष्ट नहीं कर सकता है। ऐसी सेवा जब सृजित होगी तो वह संघ और राज्य और संघ शासित क्षेत्रों के मध्य समान होगी और यह इस सेवा में भरती और सेवा शर्तों का नियमन करेगी। अतः यदि राज्य सभा यथा आवश्यक बहुमत से कोई संकल्प पारित करती है तो उससे संसद को यह योग्यता प्राप्त हो जाएगी कि वह संघ और राज्य दोनों के लिए सम्मिलित रूप से अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का सृजन कर सके। उस सीमा तक राज्य सूची के अन्तर्गत 65 वीं प्रविष्टि में राज्य को प्राप्त अधिकार प्रक्षिप्त हो जाएंगे। यदि अनुच्छेद 312 में प्राधिकृत यथा आवश्यक पूर्व शर्तें संतोषपूर्ण ढंग से पूर्ण कर ली जाती हैं तो अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के निर्माण और सृजन करने में अड़चन समाप्त हो जाएगी। जिसे उपयुक्त ढंग से अखिल भारतीय न्यायिक सेवा कहा जा सकता है।

भी वकील जिसकी पर्याप्त वकालत हो अधीनस्थ न्यायाधीश नियुक्त होकर स्थानान्तरण आदि के प्रश्न झेले। यह कहा जा सकता है कि यदि पेशे में रत वकीलों में से अखिल *भारतीय न्यायिक सेवा में आने वालों की संख्या नगण्य होती तो इस रिपोर्ट की संरचना स्वीकार कर ली गई होती।

2.6 संविधान विधेयक (चवालिसवां संशोधन) 1976 की उपधारा 45 अनुच्छेद 312 के संशोधन से संबंधित है, जिसमें अखिल भारतीय न्यायिक सेवा सहित, शब्द अखिल भारतीय सेवा, शब्दों के बाद और संघ और राज्यों में समान शब्दों के पहले डाए गए थे। विधेयक से संलग्न प्रस्तावित संशोधन के उद्देश्य और कारण में कहा गया था:

> "यह उपधारा संविधान के अनुच्छेद 312 जिसका संबंध अखिल भारतीय सेवा से है, संसद के कानून द्वारा अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन किए जाने के लिए है। ऐसी सेवा में जिला न्यायाधीश से अवर किसी पद को सम्मिलित नहीं किया गया है।"

इसके द्वारा ऐसा कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, जिससे प्रकट हो कि इस संशोधन के लिए कोई बाध्यकर कारण हो। वास्तव में संशोधन के बिना भी यदि राज्य सभा द्वारा आवश्यक बहुमत के साथ संकल्प पारित करा लिया जाता तब भी संसद अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का सृजन कर सकता था। इसको छोड़ भी दें तो भी ऐसा प्रतीत होता है कि उपधारा 45 पर कोई परिणामप्रद चर्चा नहीं हुई। संविधान के संशोधन को व्यर्थ नहीं माना जा सकता है। ऐसा मानना उचित ही होगा कि जो बात 1946 में अनावश्यक समझी गई वहीं बात तीन दशकों के पश्चात् अनिवार्य आवश्यकता बन गई और इसके लिए किसी लम्बी बहस या विस्तृत विश्लेषण की भी आवश्यकता नहीं है, जिससे इस निष्कर्ष पर पहुंचा जाए कि अखिल भारतीय स्तर पर के सेवा का सृजन किया जाए जिसमें सम्पूर्ण देश की प्रतिभा को आकर्षित किया जाए जो राज्य स्तर पर गठित सेवाओं से अधिक सक्षम सेवा कर सके।

2.7 जिला न्यायाधीश स्तर तक की सेवाएं राज्य सरकार के विषय रहे हैं। अतः प्रत्येक राज्य ने सेवाओं में भर्ती, सेवाओं की शर्तों, तथा अन्य संबंधित विषयों के लिए अपने कानून अधिनियमित कर लिए हैं। ये कानून राज्य राज्य में भिन्न हैं। एक अलग रिपोर्ट जो इसकी कुछ दिन बाद में दी जाएगी, उसमें राज्य न्यायिक सेवाओं से संबंधित कानूनों की अपर्याप्तता का विस्तृत विश्लेषण किया गया है और परिणामतः वर्तमान कष्टदायी स्थिति का भी विश्लेषण है।

2.8 अखिल भारतीय सेवा अधिनियम 1951 का विनियमन संघ और राज्यों द्वारा समान रूप से नियुक्त अखिल भारतीय सेवाओं की भर्ती और शर्तों को नियमित करने के लिए किया गया था। अधिनियम के प्रारम्भ में संघ और राज्यों के मध्य समान केवल दो ही सेवाएं, भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा ही थी। अखिल भारतीय सेवा अधिनियम (संशोधन) 1962 द्वारा धारा 2क 6 सितम्बर, 1963 को अधिनियम में अन्तर्विष्ट किया गया। तब से अनेक अखिल भारतीय सेवा में गठित की गई जैसे (1) भारतीय अभियांत्रिक सेवा (सिंचाई, विद्युत्, निर्माण और सड़क); (2) भारतीय वन सेवा; (3) भारतीय मेडिकल और स्वास्थ्य सेवा; (4) भारतीय राजस्व सेवा; (5) भारतीय अंकेक्षण और लेखा सेवा आदि। अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का भी निर्माण उन्हीं लोगों के ऊपर था, जिन्हें संघ और राज्यों के लिए समान सेवाओं का सृजन करने का भार सौंपा गया था। फिर भी 1976 तक पूर्वमत कि जिला न्यायाधीश के स्तर तक की न्यायिक सेवाएं राज्य और उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा ही देखी जानी चाहिएं, यह मत ही दृढ़ता से बना रहा।

2.9 संविधान के अनुच्छेद 312 में एक या एकाधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन का प्रावधान है। इसका संशोधन संविधान संशोधन अधिनियम (42वां संशोधन)

की पुष्टि की कि इस प्रकार की सेवा के गठन से इसके लिए नई प्रतिभाएं आकर्षित होंगी। इस संस्तुति से उन लोगों को बल प्राप्त हुआ जो इस प्रकार की सेवा के सृष्टि के समर्थक थे। भारत सरकार ने संसद में यह बात कही कि इस संबंध में राज्यों से यथा शीघ्र विचार विमर्श किया जाएगा। यह प्रश्न विधि न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय की सलाहकार समिति की सभा में भी 17 अगस्त, 1978 को उठाया गया। मंत्री ने वक्तव्य दिया कि उपयुक्त समय पर अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की संरचना पर विचार किया जाएगा। यह प्रश्न फिर से 4 जुलाई, 1979 को सभा में उठाया गया। अन्ततः 2 नवम्बर, 1980 की सलाहकार समिति की सभा में सिद्धांत रूप में अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की पुष्टि करने के लिए मतैक्य दिखाई पड़ा। इसके लिए इस प्रश्न के सभी पक्षों को ध्यान में रखकर उपयुक्त मीशनरी को विकसित करने की बात कहीं गई, जिसके अधीन यह न्यायिक सेवा होगी।

3.3 अनुच्छेद 312 के संशोधन के पश्चात् जिसमें अखिल भारतीय न्यायिक सेवा को विनिर्दिष्ट रूप से अन्तर्विष्ट कर दिया गया था। राज्यों के विचार जानने के लिए केन्द्र सरकार ने पग उठाए। केरल और मणिपुर के मुख्य मंत्रियों ने इस प्रस्ताव के प्रति सिद्धान्त रूप में अपना विरोध प्रकट किया। उनके विरोध का आधार था कि यदि न्याय पालिका पर अनुच्छेद 235 में प्रदत्त वर्तमान उच्च न्यायालय के नियंत्रण को हटकर नियंत्रण का अन्तरण संघ सरकार को हो जाता है तो न्यायपालिका की स्वतंत्रता समाप्त हो जाएगी और इसकी कार्यकुशलता भी समाप्त हो जाएगी। भारत सरकार ने अपनी स्थिति स्पष्ट की कि इसकी ऐसी कोई भी इच्छा नहीं है कि यह राज्य सरकारों का न्यायपालिका पर नियंत्रण संघ सरकार को अंतरित करे और अनुच्छेद 235 द्वारा उच्च न्यायालयों को प्रदत्त अधीनस्थ न्यायपालिका पर नियंत्रण पूर्ववत रहेगा। यह विषय मंत्रियों की सभा में फिर से 1982 में उठा। इस सभा का मुख्य विचारणीय विषय था, अवर न्यायालयों में बकाया, जिसके संबंध में विधि आयोग ने अपनी सतहत्तरवीं रिपोर्ट में पहले ही संस्तुतियां प्रस्तुत कर दी थी। इसमें भी एक मतैक्य उत्पन्न हुआ। विधि मंत्रियों में से अधिकांश ने सिद्धान्त रूप में अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन का समर्थन किया। उनका मत था कि इस प्रकार संघ और राज्य के लिए समान अखिल भारतीय न्यायपालिका प्रतिभाशाली व्यक्तियों को न्यायपालिका के लिए आकर्षित करेगी। इससे असहमति केवल तमिलनाडु के विधि मंत्री ने प्रकट की। तमिलनाडु के विरोध का कारण था कि जिला और सत्र न्यायाधीश के स्तर तक के न्यायालय अपना कार्य राज्य की भाषा में करते हैं और अखिल भारतीय सेवा के लिए भरती किए गए लोगों के लिए यह कठिन होगा कि वे राज्य की भाषा में इतने पटु हो जाएं कि अपना कार्य उस भाषा में कर सकें। अतः परिणामस्वरूप में न्याय नहीं हो सकेगा।

धीरे-धीरे राज्यों का मत अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के पक्ष में होता गया। तेरह राज्यों और चार संघ शासित क्षेत्रों ने सेवा के सृजन का पक्ष लिया और आठ राज्यों ने इसका विरोध किया। केरल और संघ शासित मिजोरम ने अपना अभिमत प्रकट नहीं किया।

जम्मू और कश्मीर राज्य का कथन स्पष्ट था। उनकी ओर से कहा गया कि जम्मू और कश्मीर राज्य के अपने संविधान में अधीनस्थ न्यायपालिका के लिए अपने उपबंध है और स्थानीय परिस्थितियों और विशेष स्थानीय भाषा को ध्यान में रख कर अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के पक्ष में वह नहीं है[1]।

3.4 अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना के लिए विधि आयोग अपने विचारों को मूर्त रूप दे, यह अत्यावश्यक है कि प्रस्ताव के विरोध में राज्यों द्वारा दिए गए विचारों और टीकाओं पर पूर्ण रूप से विचार किया जाए।

---

1. जम्मू और कश्मीर का संविधान अनुच्छेद 109, 110, 111 और 113 अनुच्छेद 109 और 113 भारत के संविधान के अनुच्छेद 233 से 237 से यथावत रूप में रख लिए गए हैं।

अध्याय 3

अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के प्रयास और उस पर विचार

3.1 प्रथम विधि आयोग ने जिसे विनिर्दिष्ट रूप से न्यायिक सुधारों की संस्तुति करने का कार्यभार सौंपा गया था, अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की सृष्टि की संस्तुति की थी। विधि आयोग ने संस्तुति की थी कि अधीनस्थ न्यायपालिका की कार्य कुशलता के लिए यह आवश्यक है, कि एक अखिल भारतीय सेवा जिसे अखिल भारतीय न्यायिक सेवा कहा जाए की सृष्टि की जानी चाहिए[1]। विधि आयोग की संस्तुति पर विधि मंत्रियों की सभा में जो 1960 में सम्पन्न हुई, विचार किया गया। अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का राज्यों और उच्च न्यायालयों द्वारा सदैव से ही अत्यन्त मुखर समर्थन और तीव्र विरोध होता रहा है। उस समय यह प्रस्ताव व्यवहारिक नहीं समझा गया और संस्तुति रख दी गई। दूसरी ओर भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा संयोजित 1961, 1963 और 1965 में उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों की नियत कालिक सभाओं में इस संस्तुति को स्वीकार किए जाने और उसे कार्य रूप देने की मांग की जाती रही। पूर्वोक्त अंतिम सभा में सरकार को एक दृढ़ सुझाव अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के गठन के लिए दिया गया था। फिर से राज्यों के विचार जो उच्च न्यायालयों के परामर्श से दिए जाने थे, मंगाए गए। सात राज्यों ने (बिहार, हरियाणा, केरल, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान और तमिलनाडु) ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया और दस राज्यों ने (आंध्र प्रदेश, असम, गुजरात, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर, नागालैंड, पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश ने) इस प्रस्ताव का अनुमोदन नहीं किया। बाद में तीन राज्य जिन्होंने प्रस्ताव का समर्थन किया था--- पंजाब, केरल और तमिलनाडु ने अपना समर्थन वापस ले लिया। शायद आधे से अधिक राज्यों द्वारा संगठित विरोध ने ही भारत सरकार के अखिल भारतीय सेवा के सृजन करने के निर्णय को समाप्त कर दिया। फिर भी इस प्रकार की सेवा के निर्माण का विचार समय-समय पर अपना सिर उठाता रहा। अगस्त, 1969 में भारत सरकार ने भारत के मुख्य न्यायाधीश से इस सेवा के सृजन के प्रस्ताव पर अपने विचार देने की प्रार्थना की थी। उन्होंने यह विचार प्रकट किया कि तत्कालीन परिस्थितियों में इस प्रकार की सेवा का सृजन अव्यवहारिक होगा। कार्मिकों की उपलब्धता और भरती के ढंग तथा उनकी कार्य कुशलता में कमी आने के कारण वादों की संख्या में वृद्धि होती जा रही थी, जिससे राज्य की न्यायिक सेवाओं के स्तर में गिरावट आ रही थी। अतः भारत के मुख्य न्यायाधीश ने मार्च 1972 में प्रधान मंत्री को सेवाओं में सुधार लाने के लिए कुछ सुझावों को देते हुए पत्र लिखा। उन्होंने उन क्षेत्रों की ओर इंगित किया जिनमें यह सुधार अपेक्षित थे और विशेषतः साथ ही साथ यह सुनिश्चित रूप से बताया कि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के प्रश्न पर फिर से विचार किया जाना चाहिए। उन्होंने इंगित किया कि यद्यपि यह प्रश्न 1969 में व्यवहारिक नहीं समझा गया, किन्तु इस सुझाव का फिर से परीक्षण किया जाना चाहिए। इस पत्राचार से ऐसा प्रतीत होता है, कुछ भी ठोस उपलब्धि नहीं हुई।

3.2 विचारण न्यायालयों में देरी और बकायों, की समस्या पर विचार करते हुए आठवें विधि आयोग ने अखिल भारतीय न्यायिक सेवा[2] के निर्माण की संस्तुति की थी। इसका मत था कि भारतीय प्रशासनिक सेवा के समान ही पद और वेतनमान रखने वाले अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के सुझाव पर गंभीरता पूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

प्रचलित विचार धारा को ध्यान में रखकर और यह तथ्य कि राज्यों का अधिसंख्या अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन का विरोध कर रहा था, इसने प्रथम विधि आयोग की संस्तुति

---

1. भारत का विधि आयोग, चौदहवीं रिपोर्ट भाग-1 अध्याय 9 अनुच्छेद 59 पृष्ठ 184।
2. भारत का विधि आयोग--सतहत्तरवीं रिपोर्ट अध्याय-9 अनुच्छेद 9.6 पृष्ठ 32।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य स्वतंत्रता आने तक जिला और सत्र न्यायाधीश के रूप में नियुक्त होते थे और उनमें से कुछ उसके पश्चात् भी न्यायिक सेवा में रहे । केवल नया प्रवेश स्थगित कर दिया गया था । इनमें से कई न्यायाधीश अपने जन्म के या शिक्षा के राज्य से भिन्न राज्य में नियुक्त किए गए थे । सत्र न्यायाधीश के रूप में उन्हें मौलिक विचारण की अधिकारिता प्राप्त थी । उन्होंने साक्षियों के स्थानीय भाषा में दिए साक्ष्य सुने और लिखे । उन्होंने उन न्यायालयों की भी अध्यक्षता की जिन्हें प्रथम अपील की सुनवाई का अधिकार प्राप्त था । उन्होंने स्थानीय भाषा जिनमें स्थानीय बोलियां भी थीं, में लिखे दस्तावेजों को पढ़ा, अर्थ किया । ऐसी कोई शिकायत सुनने को नहीं मिली जिसमें यह बात हो कि न्याय की हत्या इसलिए हो गयी कि न्यायाधीश अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा नहीं समझ सकता था । विदेशी न्यायाधीशों ने भी उस स्तर पर अपने को सक्षम सिद्ध किया है और भी आगे भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के सदस्य जो सारे भारत में भरती किए जाते हैं, अपने शिक्षा के प्रदेश से अन्य प्रदेशों को आबंटन के पश्चात् भेज दिए जाते हैं ।

भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारीगण जनता के सीधे सम्पर्क में आते हैं । जहां तक न्यायालय की कार्यवाहियों का संबंध है, साधारणतया वादकारी की ओर से बोलने के लिए वकील होता है । किन्तु जहां तक भारतीय प्रशासनिक अधिकारियों का संबंध है उनका संबंध ग्रामीण क्षेत्रों में जनता से सीधा सम्पर्क होता है और उन्हें विकास और कल्याण कार्यों के लिए जनता से सीधे बात करनी होती है । उन्हें ऐसा प्रशिक्षण दिया जाता है कि वे स्थानीय भाषा सीख जाते हैं । क्या यह भारतीय न्यायिक सेवा के लिए भरती किए गए अधिकारियों के लिए बहुत कठिन होगा कि इन्हें आबंटन किए गए राज्य की भाषा में प्रशिक्षित किया जाय । पश्चिम बंगाल सरकार ने अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना के प्रस्ताव का विरोध करते हुए यह बात स्वीकार की थी कि भाषा की समस्या भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों के लिए कोई समस्या नहीं उत्पन्न करती है किन्तु यह तथ्य भारतीय न्यायिक सेवा के अधिकारियों के लिए उचित नहीं होगी, क्योंकि न्यायिक अधिकारी के कार्य की प्रकृति और भारतीय प्रशासनिक सेवा या भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों के कार्य की प्रकृति में बहुत अन्तर है । न्यायिक निर्णयों की शुद्धता या सही होना दस्तावेजों के सही पाठ और सही अर्थ पर निर्भर करता है, जिनकी भाषा प्रायः प्रचलित बोलचाल की भाषा से भिन्न होती है । स्थानीय भाषा में दिया गया न्यायालय में मौखिक साक्ष्य और उसके अर्थ को उचित रूप से ग्रहण किए जाने के लिए भाषा का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है, जिसकी अपेक्षा भारतीय न्यायिक सेवा में अन्य राज्य से लिए जाने वाले अधिकारी से नहीं की जा सकती है । इस कथन से ही यह बात प्रकट है कि भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना के मार्ग में भाषा अलाछनीय बाधा नहीं उत्पन्न करती है । स्थानीय भाषा के अपर्याप्त ज्ञान के आधार पर आपत्ति को अनुचित मानकर योंही नहीं समाप्त या उपेक्षा की जा सकती है । इसे उचित महत्व दिया जाना चाहिए । फिर भी एक अतिरिक्त भाषा का ज्ञान प्राप्त करना बहुत कठिन नहीं है और यह भी स्मरण रखा जाना चाहिए कि न्यायाधीश और वादकारी के मध्य कड़ी के रूप में एक वकील होता है जो दुभाषिए का कार्य करता है और प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारियों के मध्य जिन्हें जनता के सीधे सम्पर्क में आना होता है । ऐसा कोई बिचौलिया नहीं होता है । अतः भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना का प्रस्ताव इस आधार पर नापसंद नहीं की जा सकती है कि सेवा के लिए भरती किए गए अधिकारियों को पर्याप्त या उचित ज्ञान उस राज्य की स्थानीय भाषा का नहीं होगा, जिसे उन्हें आबंटित किया जाएगा । इस अल्प आयु में एक अन्य भाषा के ज्ञान के लिए सधन प्रस्तावित प्रशिक्षण राज्य की स्थानीय भाषा का पर्याप्त और प्रभावप्रद ज्ञान अवश्य और निश्चित रूप से करा देगा ।

ख—मनोबल का तर्क

दूसरा तर्क जिस आधार पर विरोध आधारित है, वह है कि राज्य न्यायपालिका सेवा के सदस्यों के प्रोन्नति के क्षेत्रगंभीर रूप से दुष्प्रभावित होगी, जिससे ईर्ष्या और कुंठा उत्पन्न

राज्यों द्वारा भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना का विरोध सार रूप में तीन आधारों पर कहा जा सकता है :—

(क) प्रादेशिक भाषाओं की अपर्याप्त जानकारी के कारण न्यायिक कुशलता कम हो जाएगी क्योंकि उन्हें मौखिक साक्ष्य की उचित समझ और पकड़ नहीं रहेगी और निर्णयों को देने में कठिनाई होगी ।

(ख) राज्य न्यायपालिका के सदस्यों के प्रोन्नति के क्षेत्र गंभीर रूप से कम हो जाएंगे, जिससे सेवा में पहले से नियुक्त व्यक्तियों में द्वेष और घृणा होगी और राज्य न्यायिक सेवा में भरती बहुत प्रभावित होगी । और

(ग) अधीनस्थ न्यायपालिका पर से उच्च न्यायालय का नियंत्रण समाप्त हो जाने से न्यायपालिका की स्वतंत्रता समाप्त हो जाएगी ।

क—भाषा की समस्या

यह निःसंदेह सत्य है कि दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 272 और सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 137 की उपधारा (2) प्रदत्त शक्ति के अधीन अधिकतर राज्य सरकारों ने स्थानीय भाषा को ही न्यायालय की भाषा घोषित की है । अतः जिला और सत्र न्यायाधीश के न्यायालय तक के सभी न्यायालयों में न्यायालय की कार्यवाहियां और निर्णय स्थानीय भाषा में ही लिखी जाती हैं । अतः यदि संघ और राज्यों के लिए समान न्यायक सेवा के लिए भरती की जाती है तो यह नितान्त संभव है कि ऐसे व्यक्ति ने जिसने अपनी परीक्षा एक राज्य की भाषा में उत्तीर्ण की है उसकी नियुक्ति किसी ऐसे राज्य में की जाय जिसकी स्थानीय भाषा पूर्णतः दूसरी हो । यह भी बात पूर्णतः सत्य है कि प्रत्येक सिविल या दांडिक विचारण में साक्षीगण अपना साक्ष्य स्थानीय भाषा कभी-कभी तो स्थानीय बोलियों में देते हैं । यह भी सत्य है कि न्यायिक प्रक्रिया में यह अत्यावश्यक है कि मौखिक साक्ष्य जो स्थानीय भाषा में दिया जाता है और दस्तावेज जो स्थानीय भाषा में होते हैं, उनकी पूरी समझ होनी चाहिए जिससे न्याय दिया जा सके । इसके अर्थ यह हुए कि भारतीय न्यायिक सेवा के सदस्य को जिसे राज्य विशेष में नियुक्त किया जाता है उसे स्थानीय भाषा में निष्णात होना चाहिए । इन वास्तविक आशंकाओं पर अधिकतम ध्यान देने पर क्या यह कहा जा सकता है कि भाषा एक ऐसी अलंघनीय बाधा उत्पन्न करती है जिससे भारतीय न्यायिक सेवा का विचार अव्यवहारिक हो जाती है ।

1956 राज्यों के पुनर्गठन के पूर्व संयुक्त राज्य बम्बई में तीन मुख्य और सुभिन्न क्षेत्र हुआ करते थे, जिनकी क्षेत्रीय भाषा मराठी, गुजराती और कन्नड़ थी । इसी प्रकार तमिलनाडु, जिसे उस समय मद्रास के रूप में जाना जाता था, में ऐसे बड़े भू-भाग थे, जिसमें अलग-अलग स्थानीय भाषाएं जैसे तमिल, तेलुगु और मलयालम बोली जाती थीं । बिहार की अलग राज्य के रूप में स्थापना के पूर्व, और उड़ीसा को बंगाल से अलग किए जाने के पहले संयुक्त राज्य बंगाल में तीन मुख्य भाषाएं—बंगाली, हिन्दी और उड़िया भाषाएं थीं । ऐसे अनेक दृष्टांत दिए जा सकते हैं । अधिक बड़े द्विभाषी राज्य बम्बई का दृष्टांत सामने रखते हुए और यह भी स्मरण रखते हुए कि सबसे निचले न्यायालय की कार्यवाहियां स्थानीय भाषा में ही सम्पन्न होती थी; इस कठिनाई का हल इस तरह निकाला गया था कि अधीनस्थ न्यायपालिका के प्रत्येक सदस्य के लिए यह अपरिहार्य था कि वह अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त एक अन्य भाषा में भिज्ञता प्राप्त करें । दृष्टांत के लिए अधीनस्थ न्यायपालिका का सदस्य जिसकी मातृभाषा गुजराती थी उसे मराठी या कन्नड किसी एक भाषा को सीखना और परीक्षा उत्तीर्ण करनी होती थी । बाद में हिन्दी परीक्षा भी उत्तीर्ण करना अनिवार्य हो गया था । इसी प्रकार की व्यवस्था तत्कालीन मद्रास राज्य में भी थी । यह व्यवस्था सुचारू रूप से चली और ऐसी शिकायत कभी सुनने को नहीं मिली कि अधीनस्थ न्यायपालिका का कोई सदस्य जिसे अपनी मातृभाषा से भिन्न बोली बोलने वाले प्रदेश में नियुक्त किया गया उसे साक्षियों को समझने, स्थानीय भाषाओं में लिखे, दस्तावेजों का अर्थ करने और निर्णय लिखने में कठिनाई हुई हो ।

ही नहीं सीमित हैं। इस प्रकार अनुच्छेद 235 में परिकल्पित नियंत्रण में जिला न्यायाधीशों[1] के व्यवहार और अनुशासन, उनकी भावि प्रोन्नति[2] और उनकी वरिष्ठता के विवाद[3], उनके स्थानान्तरण[4]; काडर के बाहर उनकी सेवाओं को सरकार के हाथों में दिया जाना[5]; उनकी सेवाओं की समाप्ति और सेवाओं में बने रहने की योग्यता का विचार[6]; उन पर पूर्ण अनुशासनात्मक अधिकारिता जिसमें अनुशासन सम्बन्धी जांच भी सम्मिलित है[7]। और उनका समय से पूर्व अवकाश ग्रहण[8] भी आता है। बाद के एक निर्णय में न्यायालय ने निर्णय किया कि अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्य उच्च न्यायालय के नियंत्रण के अधीन ही नहीं अपितु उच्च न्यायालय की संरक्षकता और अभिरक्षा में भी हैं। अधीनस्थ न्याय-पालिका अर्थात् मूल स्थान के न्याय का नियंत्रण दो स्वामियों अर्थात् सरकार और उच्च न्यायालय में निहित होना व्यर्थ ही सिद्ध होगा क्योंकि प्रशासन सदैव ही उच्च न्यायालय से बलवान ही रहेगा। अधीनस्थ अंगों पर उच्च न्यायालय की प्रशासनिक अधिकारिता का कोई भी अर्थ इस विचार से किया जाना चाहिए कि न्यायपालिका से कार्यपालिका का अलगाव संविधान का मूलभूत सिद्धान्त है[9]। संविधान के अनुच्छेद 222 का अर्थ करते हुए जिससे राष्ट्रपति को उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश का स्थानान्तरण दूसरे उच्च न्यायालय को करने का अधिकार प्राप्त होता है--सभी निर्णयों का न्यायालय द्वारा सारांशत: उल्लेख किया गया है। बहुमत ने यह स्वीकार करते हुए भी कि यद्यपि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के स्थानान्तरण के अधिकार राष्ट्रपति को प्राप्त हैं और उसके साथ केवल एक ही शर्त है कि यह अधिकार भारत के मुख्य न्यायाधीश के विचार-विमर्श के बाद ही प्रयोग किया जाना चाहिए न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि यद्यपि भारत के मुख्य न्यायाधीश का मत राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी नहीं है, फिर भी उसे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए और सामान्यतया इसे सरकार द्वारा स्वीकार किया जाना चाहिए क्योंकि न्यायपालिका की स्वतंत्रता हमारे आधारभूत दस्तावेज का सर्वप्रमुख सिद्धान्त है[10]। निःसंदेह रूप से ये निर्णय अधीनस्थ न्याय-पालिका पर उच्च न्यायालय के नियंत्रण की पूर्ण व्यापकता सिद्ध करते हैं और साथ ही साथ खुले या छिपे रूप से भी कार्यपालिका के हस्तक्षेप को पूर्णत: समाप्त करते हैं। मूल भूत सिद्धान्त जिस पर ये संवैधानिक उपबंध--जैसा उच्चतम न्यायालय के निर्णयों द्वारा अर्थ लगाया गया है--आधारित है; किसी भी प्रकार प्रत्यक्षत: या परोक्षत: भारतीय न्यायिक सेवा की स्कीम बनाते समय भंग या ढीले नहीं किए जा सकते हैं ।

---

1. स्टेट आफ वेस्ट बंगाल वि० निपेन्द्र नाथ बागची ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 447।
2. स्टेट आफ असम वि० कुशेश्वर सैकिया ए० आई० 1970 एस० सी० 1616 और जोगीन्दर नाथ वि० यूनियन आफ इण्डिया ए०आई०आर० 1975 एस० सी० 511।
3. स्टेट आफ बिहार वि० मदन मोहन प्रसाद (1976) एस० सी० सी० 529।
4. स्टेट आफ असम वि० रंगा मोहम्मद ए० आई० आर० 1967 एस० सी० 903।
5. स्टेट आफ उड़ीसा वि० सुधांशु शेखर मिश्र ए० आई० आर० 1968 एस० सी० 647।
6. राम गोपाल चतुर्वेदी बि० स्टेट आफ मध्य प्रदेश, (1970) एस० सी० आर० 472।
7. पंजाब एण्ड हरियाणा हाई कोर्ट वि० स्टेट आफ हरियाणा ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 613।
8. स्टेट आफ हरियाणा वि० इन्दर प्रकाश आनंद (1976) 2 एस० सी० सी० 977।
9. शमशेर सिंह वि० स्टेट आफ पंजाब ए० आई० आर० 1974 एस० सी० 2192।
10. यूनियन आफ इंडिया वि० सांकल चंद एथन्सेठ (1977) 4 एस० सी० 193।

होगी और परिणामतः प्रतिभाशाली युवा वर्ग का राज्य न्यायिक सेवाओं की ओर आने का अवसर ही समाप्त हो जाएगा । राज्य न्यायिक सेवा का सदस्य जो मुंसिफ, न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी या कनिष्ठ श्रेणी का सिविल न्यायाधीश के रूप में प्रवेश लेता है ऊपर की ओर प्रोन्नत होता है। वह साधारणतया अधिकांश राज्यों में जिला और सेशन न्यायाधीश का पद प्रोन्नति की दूसरी अवस्था में ही प्राप्त कर लेता है। महाराष्ट्र और गुजरात में सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ विभाग), प्रथम श्रेणी का न्यायिक मजिस्ट्रेट पहले प्रोन्नत होकर सहायक सेशन न्यायाधीश और सहायक न्यायाधीश बनता है और तदुपरान्त जिला और सेशन न्यायाधीश के रूप में प्रोन्नत हो जाता है। अनुच्छेद 232 में उल्लिखित जिला न्यायाधीश के पद से अवर पद के लिए अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का सृजन नहीं किया जाना चाहिए । इससे अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना से निचले काडर के सदस्यों के प्रोन्नति के अवसर प्रभावित नहीं होंगे । राज्यों में से अधिकतर राज्यों में जिला और सेशन न्यायाधीश के स्तर पर सीधे भर्ती के नियम हैं । अतः जिला और सेशन न्यायाधीश के काडर के लिए सभी पद निचले ओहदे के सदस्यों को प्रोन्नति के लिए नहीं उपलब्ध होते हैं। ओ० पी० सिंहला वि० भारत की संघ सरकार[1] में उच्चतम न्यायालय के निर्णय से यह स्पष्ट है। दिल्ली उच्च न्यायिक सेवा के नियमों द्वारा जिला और सेशन न्यायाधीश के काडर के लिए सीधे भरती की जा सकती थी । जिस सीमा तक उच्च न्यायिक सेवा के लिए सीधे भर्ती होती है उस सीमा तक उसी अनुपात में अधीनस्थ ओहदों के प्रोन्नति के अवसर कम हो जाते हैं। यदि भारतीय न्यायिक सेवा निर्मित या सृजित की जाती है तो इस स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होगा । निःसंदेह इस सेवा में नए विधि स्नातकों और बार के सदस्यों से सीधे भर्ती की जाएगी किन्तु राज्य न्यायिक सेवा के अधीनस्थ सदस्यों को प्रोन्नति के लिए अधिक प्रतिशत में पद आरक्षित कर दिए जाएंगे। इसके अलावा भी भारतीय न्यायिक सेवा में भर्ती के लिए अधीनस्थ राज्य न्यायिक सेवा के सदस्यों को यह अधिकार होगा कि वे भी प्रतियोगी परीक्षाओं में भाग ले सकें। सेवा के विधि शास्त्र के स्थापित सिद्धान्त की अनदेखी नहीं की जा सकती है। सिद्धान्त है कि सेवा में रत कोई भी व्यक्ति आयु बाधा के आधार पर सीधे भर्ती के लिए परीक्षा से अनर्ह नहीं किया जा सहता है । अतः यह आशंका कि भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना से अधीनस्थ राज्य न्यायिक सेवा के सदस्यों के प्रोन्नति के अवसर बहुत अधिक परिमाण में कम या नष्ट हो जाएंगे। पूर्णतः आधारहीन है।

ग—उच्च न्यायालय का नियंत्रण

आपत्ति का तीसरा आधार गलत धारणा पर आधारित है कि भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना से अधीनस्थ, न्यायालयों और जिला न्यायालयों पर से उच्च न्यायालय का नियन्त्रण समाप्त अथवा कमजोर हो जाएगा। अतः न्यायपालिका की स्वतंत्रता जो पहले से ही कम है और भी नष्ट हो जाएगी। जिला न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालयों पर उच्च न्यायालय का नियंत्रण सर्वव्यापी है । संविधान के अध्याय 6 भाग 6 के उपबन्धों का उद्देश्य ही है कि अधीनस्थ न्यायपालिका और उसके सेवा कर्मिओं और अधिकारियों को कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त रखा जाए। अनुच्छेद 233-237 जिसका शीर्षक "अधीनस्थ न्यायालय" है अधीनस्थ न्यायपालिका को कार्यपालिका के प्रभाव से बचाए रखने के लिए बनाए गए हैं।

अनुच्छेद 235 में नियंत्रण शब्द के प्रयोग ने अनेक वादों को जो राज्य की कार्यपालिका और उच्च न्यायालयों के मध्य उत्पन्न हुए थे, उच्चतम न्यायालय द्वारा विशेष उपबन्धों के उच्च उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सुलझाए जा चुके हैं। इस क्षेत्र और नियंत्रण की सीमा का विस्तार उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक निर्णय में विस्तृत ही होता जा रहा है। नियंत्रण शब्द को इसका रूप उच्चतम न्यायालय के निर्णय से प्राप्त हुआ है। न्यायालय ने निर्णय दिया है कि अनुच्छेद 235 के अधीन उच्च न्यायालयों में निहित नियंत्रण की परिधि और विस्तार के अन्तर्गत सम्पूर्ण प्रशासकीय नियंत्रण आ जाता है और यह केवल सामान्य पर्यवेक्षण या अधीनस्थ न्यायालयों के दिन प्रतिदिन के कार्य के प्रबन्ध तक

1. ए आई आर 1984 एस सी 1595 ।

और विधि की निरंतरता, यथास्थिति और निर्णयों के स्थायित्व में होती है--को अनदेखी करते हुए भी उपयुक्त तीनों आपत्तियों के औचित्य अथवा अनौचित्य का परीक्षण यह निश्चय करने के लिए करना ही होगा कि वे सही हैं या गलत।

उच्च न्यायालयों के नियंत्रण के ह्रास की आशंका के लिए तनिक भी औचित्य नहीं है। यह बात संक्षेप में बता दी गई है। वास्तव में जैसा इस रिपोर्ट में बाद में बताया जाएगा, सेवा के निर्माण में न्यायपालिका को स्वतंत्रता और भी अधिक दृढ़ होने की संभावना है। भारतीय न्यायिक सेवा में अन्तर्विष्ट किए जाने वाले पदों के संभावित दुराशंका का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि संविधान के अध्याय 6 भाग 6 में प्रयुक्त शब्द "जिला न्यायाधीश" की स्पष्ट परिभाषा संविधान के अनुच्छेद 236 में कर दी गई है। अनुच्छेद 312 (3) के साथ इस उपबंध के पाठ से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किस स्तर तक और किस प्रकृति के पद भारतीय न्यायिक सेवा में सम्मिलित किए जा सकते हैं। इसके बारे में तनिक भी अनिश्चितता नहीं है।

न्यायिक सेवा के सदस्यों की अस्पष्ट आशंकाओं को तनिक भी महत्व नहीं देना चाहिए क्योंकि उनकी प्रवृत्ति प्रायः सभी परिवर्तनों की विरोध करने की होती है। यद्यपि न्यायिक प्रशासन की वर्तमान दुर्दशा पर असंतोष भी प्रकट करते रहते हैं फिर भी स्थिति में सुधार के लिए किए जाने वाले पगों को उठाने से हिचकते रहते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के विरोध में आयोग को राज्यों की ओर से और राज्यों के उच्च न्यायालयों की ओर से कोई उचित और दृढ़ आपत्तियां नहीं मिली हैं।

सामान्य जन की आशंकाएं

3.6 ऐसा मुखर जनमत है कि देश की न्यायिक संरचना में कोई भी परिवर्तन राज्यों और उच्च न्यायालयों और साथ ही साथ विधि व्यवसाय में लगे लोगों की सहमति के बिना नहीं किया जाना चाहिए अन्यथा परिवर्तन अपरिणामकारी होगा। संसदीय प्रजातंत्र में युगों पुरानी संस्थाओं में कोई भी मौलिक परिवर्तन करने वाले प्रस्ताव की स्वीकृत मोटे तौर पर उन लोगों द्वारा अवश्य होनी चाहिए जो लोग इस परिवर्तन से प्रभावित होंगे। इससे परिवर्तन में सरलता होती है। किन्तु राज्यों की सहमति या राज्यों के बहुमत की स्वीकृति पूर्व आवश्यकता नहीं है। राज्य सभा की स्थापना राज्यों की पर्याप्त और समान प्रतिनिधित्व के सिद्धांत पर आधारित है। राज्य सभा का एक संकल्प जिसे उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत द्वारा पारित किया जाता है भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के लिए संसद को कानून बनाने का अधिकार प्रदान करता है। इस प्रकार के किसी भी संकल्प का राज्य सभा द्वारा अनुमोदन का अर्थ है राज्यों की अधिकांश संख्या द्वारा उसकी स्वीकृति। अतः भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के लिए राज्य सभा के बाहर राज्यों द्वारा संकल्प की स्वीकृति को अनिवार्य पूर्व आवश्यकता नहीं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त भी आवश्यक बहुमत से राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प सरकार को यह शक्ति प्रदान करता है जिससे वह विधि का विनियमन कर सके जिसे फिर से लोक सभा और राज्य सभा में विचार किया जाना और पारित किया जाना आवश्यक होगा। इस संवैधानिक संरचना से जिसमें निर्वाचित जन प्रतिनिधियों द्वारा स्पष्ट मत प्रकट किया जाना है राज्यों की सहमति सुनिश्चित हो जाती है। 1961 में राज्य सभा द्वारा बने अभियंत्रण, मेडिकल और स्वास्थ्य सेवाओं के लिए अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन किए जाने के समय चर्चा में तत्कालीन गृह मंत्री श्री लाल बहादूर शास्त्री ने अपना मत प्रकट किया कि किसी को संविधान के उपबंधों को बहुत सीमित और तकनीकी दृष्टि से नहीं देखना चाहिए और संकल्प के पारित हो जाने के पश्चात् अखिल भारतीय सेवाओं के निर्माण के लिए संबंधित राज्य के विचार सुसंगत प्रश्न पर जान लिए जाने चाहिए। अतः संवैधानिक उपबंध होते हुए भी उसकी उपेक्षा का विधि मंत्रियों की सभा के प्रस्ताव के बाद भी अभी हाल में ही भारत सरकार द्वारा सभी राज्य सरकारों को अपने विचार और टीकाएं अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के लिए भेजने को आमंत्रित किया गया। राज्य सरकारों से कहा गया

भारतीय न्यायिक सेवा के सदस्य राज्यों को विनिहित किए जाएंगे, फिर जब राज्यों में नियुक्त किए जाएंगे तो उन पर अनुच्छेद 235 के अधीन (केवल प्रारंभिक भर्ती को छोड़कर) अनुशासन तिलम्बन आदि के मामले में उच्च न्यायालय का नियंत्रण अक्षत रहेगा केवल अन्तर इतना होगा कि इस समय यह प्रोन्नति या अनुशासन की कार्यवाहियों के लिए राज्य पाल को संस्तुति करता है, इसे ऐसे मामले राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग को करना होगा जो बाद में अपनी आवश्यक संस्तुति भारत के राष्ट्रपति को देगा। किन्तु राष्ट्रपति उसी रीति से कार्य करेगा जैसा इस समय राज्यपाल द्वारा उच्च न्यायालय की संस्तुति को बाध्यकार मानकर किया जाता है। अतः यह आशंका कि भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना से उच्च न्यायालय का नियंत्रण क्षीण हो जाएगा। या न्यायपालिका की स्वतंत्रता कम हो जाएगी केवल काल्पनिक है, यथार्थ नहीं है। इसके विपरीत जब राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग की संस्तुति की जा रही हो जिसे भारतीय न्यायिक सेवाओं की समस्याओं से निपटने की शक्ति प्राप्त हो तो अधीनस्थ न्यायपालिका की स्वतंत्रता अधिक दृढ़ होगी।

सभी तीनों आपत्तियों पर गुणों के आधार पर स्वतंत्र परीक्षण करने के पश्चात् आयोग का यह विश्वास है कि सभी आपत्तियां अथवा कोई भी एक आपत्ति भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना के पक्ष में है क्योंकि इसकी आवश्यकता है और यह न्याय के प्रशासन को सुदृढ़ करने में सहायक है।

3.5 राज्यों के पश्चात् भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के विषय पर उच्च न्यायालयों के विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। प्रश्न से सुसंगत प्रश्नों के उत्तर देने वाले उच्च न्यायालयों में से छः उच्च न्यायालय उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, गुजरात, केरल, बिहार और राजस्थान ने सेवा के सृजन का समर्थन किया है। जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय को छोड़कर देश के शेष उच्च न्यायालयों ने या तो प्रस्ताव का लिखित रूप में विरोध किया है अथवा इस सेवा की व्यवहारिकता और उपयोगिता के प्रति अपनी गंभीर आशंकाएं प्रकट की हैं।

उच्च न्यायालयों के विचारों का गहराई से परीक्षण करने से पूर्व यह उचित होगा कि भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा मुख्य न्यायाधीश की जनवरी 1985 में आहूत सभा में पारित हाल के संकल्प में व्यक्त उनका सामूहिक विचार जान लिया जाए। प्रस्ताव निम्न-लिखित है :—

"इस सभा का मत है कि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन से अनेक व्यवहारिक कठिनाईयां उत्पन्न होंगी अतः इस प्रकार की सेवा की रचना नहीं की जानी चाहिए। अधीनस्थ न्यायालयों पर से उच्च न्यायालय के नियंत्रण का ह्रास और उसके परिणामस्वरूप न्यायपालिका की स्वतंत्रता का आहरण—दो ऐसे मुख्य कारण हैं जिससे अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का निर्माण नहीं किया जाना चाहिए। सभा में यह अनुभव किया गया कि संरचना की अधिक विस्तृत जानकारी के बिना निश्चित मत प्रकट करना असंभव है।"

यह प्रस्ताव भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा भारत सरकार को प्रेषित कर दिया गया था। उनका विरोध इस आशंका को लेकर है कि उच्च न्यायालयों का नियंत्रण अधीनस्थ न्यायालयों से कम हो जाएगा जिसका परिणाम यह होगा कि कार्यपालिका का हस्तक्षेप बढ़ जाएगा जो संविधान के मूलभूत सिद्धान्तों और संविधान के उपबन्धों के विपरीत होगा। यह सोच न्यायपूर्ण नहीं है जैसा पूर्व में कहा जा चुका है।

भारतीय न्यायिक सेवा के निर्माण का विरोध करने वाले उच्च न्यायालयों के विचारों का विश्लेषणात्मक मूल्यांकन करने से आपत्ति के तीन मुख्य आधार प्रकट होते हैं। (1) उच्च न्यायालयों के नियंत्रण का ह्रास जिससे न्यायपालिका की स्वतंत्रता का भी ह्रास होगा; (2) भारतीय न्यायिक सेवा के अन्तर्गत आने वाले पद के स्तर के बारे में अनिश्चितता; और (3) स्थानीय भाषा के ज्ञान की अपर्याप्तता जिससे न्यायिक अधिकारियों के कर्तव्य निर्वाह में अकुशलता आती जाएगी। किसी भी परिवर्तन की सामान्यतया विरोध की प्रकृति विशेषतः न्यायिक बिरादरी के सदस्यों द्वारा जिनकी सामान्यतया पसंद विधि की निश्चितता

न्यायालय में पद दिया जाना चाहिए। उनके मतानुसार विधि की डिग्री भारतीय प्रशासनिक सेवा के लिए पूर्व आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। इस पर उपयुक्त स्थान पर विचार किया जाएगा। यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि भारतीय न्यायिक सेवा में प्रवेश पाने के लिए विधि व्यवसाय यदि अनावश्यक बनाया जा रहा है तो यदि विधि की डिग्री की पूर्व आवश्यकता भी भारतीय न्यायिक सेवा में भरती के लिए समाप्त कर दी गई तो यह बहुतों को चौंका देने वाला होगा।

कि वे अपने-अपने यहां के उच्च न्यायालयों के मत भी इस संबंध में प्राप्त कर लें। सामान्य रूप से यदि कहा जाए तो अधिकतर राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेशों की सरकारों तथा अनेक उच्च न्यायालयों ने अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन का पक्ष लिया है।

3.7 अब न्यायिक अधिकारियों के संघों के मतों पर विचार करते हैं। इस प्रस्ताव की सबसे अधिक जोरदार आलोचना राजस्थान न्यायिक सेवा अधिकारी संघ द्वारा की गई है। इसकी कार्यसमिति का प्रस्ताव नीचे उधृत किया जा रहा है :--

> "भारतीय अधीनस्थ न्यायपालिका को डर है कि यदि वर्तमान अधीनस्थ न्यायपालिका में से अनुमेलन के लिए इच्छानुसार चुनाव की पद्धति अपनाई जाती है चाहे वह उच्चतर न्यायिक सेवा बनाकर या सेवाकाल की अवधि के आधार पर या वर्तमान समूह में से चयन द्वारा तो वर्तमान अधिकारियों के काडर के हितों की केवल हानि के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा। यह पद्धति किसी भी राज्य की न्यायिक सेवा में कठिन प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण कर आने वाले सेवा के सदस्यों में जीवन भर के लिए कुंठा का कारण हो जाएगी"।

साधारणतया सभी राज्यों में जिला न्यायाधीश के स्तर के अधिकारियों की भर्ती सीधे की जाती है और यह अखिल भारतीय न्यायिक सेवा उसी स्तर के लिए बनाई जा रही है। कुछ राज्यों में जिला न्यायाधीश के स्तर के अधिकारियों की भर्ती की सीमा 50% तक है। अतः यह कथन सही नहीं है कि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन से अधीनस्थ न्याय-पालिका के सदस्यों के प्रोन्नति के अवसर कम हो जाएंगे। जैसा पहले इंगित किया गया है कि अधीनस्थ न्यायिक सेवा के सदस्यों को भी, उनके प्रोन्नति के कोटा अंश के अतिरिक्त, प्रतियोगी परीक्षा में सम्मिलित होने के उपबंध बनाए जाएंगे। यह विचार उनकी यथास्थिति वादी सोच का परिचायक है। यह समझकर कि उनका यह जोरदार विरोध किसी सारवान आधार पर स्थित नहीं है और यह किसी के गले नहीं उतरेगा : संघ ने पर्याय के रूप में सुझाव दिया कि प्रस्तावित सेवा को प्रारंभ में अधीनस्थ राज्य न्यायिक सेवा के काडर के सभी व्यक्तियों का अनुमेलन और अन्तर्विष्ट कर लेना चाहिए। निचली न्यायिक सेवा को उच्चतर न्यायिक सेवा से समाकलन करने के लिए संघ ने दोहरी वरिष्ठता सूची बनाने का --एक अखिल भारतीय सेवा के लिए और दूसरी राज्य न्यायिक सेवा के लिए--सुझाव दिया था। सुझाव सुविचारित नहीं है और लगता है कि अनुच्छेद 312 (3) द्वारा मजबूरियों को ध्यान में नहीं रखा गया है जिसके द्वारा अखिल भारतीय न्यायिक सेवा में जिला न्याया-धीश, (जैसा अनुच्छेद 236 में परिभाषित है) के पद से अवर पद के व्यक्तियों को सम्मि-लित किया जाना प्रतिषिद्ध है। अतः दिया गया सुझाव असंवैधानिक है और स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

अखिल भारतीय न्यायाधीश संघ ने अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की सृष्टि का समर्थन किया है। विधि आयोग की चौदहवीं और सत्तहत्तरवीं रिपोर्ट में दिए हुए विचारों को आधार मानकर इसने कहा है कि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के द्वारा राष्ट्रीय एकात्मकता को बढ़ावा मिलेगा। देश के न्यायिक प्रशासन को गति प्राप्त होगी, न्यायिक सेवा की ओर प्रतिभाशाली व्यक्ति आकर्षित होंगे और न्यायिक सेवा के अधिकारियों में विश्वास का भाव उत्पन्न होगा। संघ का विचार है कि प्रोन्नति के अवसर कम होने की बजाय भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना से अधिक होने की आशा है।

3.8 आयोग की प्रश्नावली का उत्तर देते हुए भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों ने सुझाव दिया है कि भारतीय न्यायिक सेवा के लिए अलग से परीक्षाएं नहीं होनी चाहिए वरन् यह संघ राज्य सेवा आयोग द्वारा ली जाने वाली सामान्य सिविल सेवा परीक्षाओं का एक अंग होना चाहिए और जो सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते हैं, उन्हें यह विकल्प होना चाहिए कि वे भारतीय प्रशासनिक सेवा में जाए अथवा भारतीय न्यायिक सेवा में जाए। उन्होंने आगे सुझाव दिया है कि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा में भर्ती व्यक्तियों को गहन प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और प्रशिक्षण काल में उन्हें न्यायपालिका के सबसे नीचे के

पूर्व विधि आयोग ने संस्तुति दुहरायी है कि प्रत्येक उच्च न्यायालय के एक तिहाई न्यायाधीश बाहर की अधिकारिता के होने चाहिए[1]। एक नीतिगत निर्णय लिया जा चुका है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या की एक तिहाई संख्या उच्च न्यायालय के राज्य के बाहर की होनी चाहिए। इस निर्णय के क्रियान्वयन की पद्धति को लेकर मतभेद है। यह स्थानान्तरण द्वारा होना चाहिए अथवा भर्ती के समय ही किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश राज्य के बाहर का होगा—यह नीति केवल स्वीकार ही नहीं अपितु क्रियान्वित भी हो रही है; भले ही धीरे-धीरे हो रही हो। इसके अलावा इस बात की भी अभी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है कि बार के सदस्य जिला न्यायाधीश के स्तर अथवा अन्य किसी स्तर का पद इसलिए स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं होंए क्योंकि उनकी नियुक्ति राज्य के बाहर की जाएगी। हम उन दिनों से पर्याप्त दूर आ गए हैं जब बार के सदस्य न्यायपालिका के लिए अपने राज्य में ही नियुक्त किए जाते थे। हिन्दी भाषी व्यक्तियों द्वारा सेवा में वर्चस्व की बात केवल काल्पनिक है।

4.3 दूसरी ओर जब यह बात मानी जा रही है कि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा नवयुवकों के लिए अधिक आकर्षण उत्पन्न करेगी तो यह तथ्य ही बड़ी माला में काल्पनिक हानियों को समाप्त करने के लिए पर्याप्त है। अखिल भारतीय आधार पर उच्चतर न्यायिक सेवा की स्थापना से ही उन वकीलों को जिनकी अध्ययन की ओर देश के विभिन्न भागों में जाने की रुचि है और जिनका उत्साह बार में रहकर संभावित समृद्धि प्राप्त करने की संभावना से कम नहीं होता, आकर्षण प्राप्त होगा। अब भी महान उद्देश्य के लिए सेवा करने के आदर्श वाले लोग दिखाई पड़ते हैं। यह सर्व विदित है कि निरपवाद रूप से सफल वकीलों ने भी उच्च न्यायालय और जिला स्तर के न्यायाधीश का पद स्वीकार किया है।

4.4 उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों द्वारा प्रकट आपत्तियों का संक्षिप्त उल्लेख करने के पूर्व भारतीय न्यायपालिका के बारे में एक चिरपरिचित लोकोक्ति का उल्लेख किया जा सकता है। सामान्य नियम है कि न्यायपालिका के सदस्य अपने व्यक्तिगत रूप में या सामूहिक रूप में किसी परिवर्तन से बहुत हिचकते हैं। पूर्व निर्णयों पर आधारित विधि प्रणाली और निर्णयों का ही अनुगमन करने का सिद्धान्त दोनों मिलकर दृष्टि को संकीर्ण कर देते हैं और परिवर्तनों के प्रति स्वाभाविक प्रतिरोध उत्पन्न होता है। इस पृष्ठभूमि में हमें उच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों का अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना को लेकर शक्तिशाली विरोध का अध्ययन करना चाहिए। ऐसा कहा गया कि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का गठन अधीनस्थ न्यायिक सेवा के लिए काल सिद्ध होगा। यदि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के अधिकारी मुख्य न्यायिक मैजिस्ट्रेट और जिला और सत्र न्यायाधीश हो जाएंगी तो राज्य के अधीनस्थ न्यायिक सेवा के अधिकारियों पर इसका प्रभाव बड़ा अनिष्टकर होगा। इससे उनके मनोबल पर भयंकर दुष्प्रभाव होगा। आगे प्रोन्नति के कोई अवसर न जानकर क्योंकि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के अधिकारियों द्वारा उन्नति का अवसर अवरुद्ध कर दिया गया होगा। निचली न्यायपालिका अशांत, निराश और भ्रष्ट हो जाएगी। फिर अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के निर्माण से बार के सदस्यों में से सीधे जिला न्यायाधीशों के काडर के लिए भरती समाप्त हो जाएगी। इस आलोचना में कोई दम नहीं है इसके अलावा यह आलोचना इस जानकारी के अभाव में है कि भारतीय न्यायिक सेवा का निर्माण गठन और नियुक्ति किस प्रकार की जाएगी। प्रस्तुत रिपोर्ट में इस सेवा की परिकल्पना ऐसे रूप में की गई है कि इसमें भरती सीधे प्रतियोगी परीक्षा द्वारा की जाएगी, अधीनस्थ न्यायिक सेवा के काडर से पर्याप्त माला में प्रोन्नति के अवसर रहेंगे और बार के सदस्यों में से वरिष्ट और अनुभवी सदस्यों में से सीधे भर्ती होगी। वर्तमान स्थिति की अच्छी बातें बनी रहेगी और भद्दी बातें हटा दी जाएगी। एक अन्य न्यायाधीश ने सेवा की स्थापना का जोरदार विरोध किया है। उनके कथनानुसार न्यायपालिका को पुलिस का प्रशासनिक अधिकारियों के समान मानना जहां अल्पायु में ही भरती करने का सिद्धान्त होता है, गलत है। न्याय के प्रशासन में अनुभव, विधि का ज्ञान और सही दृष्टिकोण की आवश्यकता

---

1. भारत का विधि आयोग 30वीं रिपोर्ट अध्याय 6 अनुच्छेद 6.21 पृष्ठ 25।

अध्याय 4

सकारात्मक पहुंच

4.1 संविधान के अनुच्छेद 235 के द्वारा जिला न्यायालयों और अधीनस्थ न्यायालय के ऊपर राज्य के उच्च न्यायालय का नियंत्रण विहित किया गया है। अतः यह माना जा सकता है कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशगण जिला न्यायालयों के अधीनस्थ न्यायपालिका के कार्मिकों और उनके अधीनस्थ न्यायालयों की भर्ती, प्रोन्नति और नियुक्ति में आने वाली समस्याओं तथा परिवर्तन की आवश्यकताओं से परिचित होंगे। विधि आयोग ने यथार्थवादी और विश्वसनीय सूचनाओं के एकत्रीकरण के लिए प्रत्येक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीशों से व्यक्तिशः मिलकर उनसे प्रत्येक से प्रार्थना की वे आयोग को अन्य बातों के अतिरिक्त अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के गठन की आवश्यकता, व्यवहारिकता और उपादेयता पर अपने विचार दें। इसके अतिरिक्त वकील संघटनों की भूमिका न्यायपालिका को स्वरूप देने में महत्वपूर्ण होती है। अतः उनके भी विचार सेवा की शर्तों और भर्ती के संबंध में जानना आवश्यक है । अधीनस्थ न्यायालयों के सदस्यों के प्रोन्नति के अवसर कार्य कुशलता, निष्ठा और सक्षमता के बारे में भी वकील संघों से जानकारी लेना आवश्यक है। तदनुसार ही आयोग ने अध्यक्ष अखिल भारतीय बार कौंसिल और प्रत्येक राज्य के बार कौंसिल को विस्तृत पत्र भेजे। इसके साथ ही साथ आयोग ने समाचार माध्यमों द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को जिसकी रूचि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के गठन में हो, उसके विचार और आलोचना आयोग को प्रेषित करने को आमंत्रित किया। यह संतोष की बात है कि आयोग के प्रश्नों पर बहुत विस्तृत प्रतिक्रिया हुई। मोटे तौर पर अधिकांश विचार अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना के पक्ष में थे। अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना के विचार का अनुमोदन करते हुए कुछ संकोच भी प्रकट किया गया था उस पर संक्षेप में विचार करना आवश्यक है। सभी उत्तरों में समान रूप से निम्न बातें थी :--

(क) छिपी हुई आशंका कि उच्च न्यायालय का अनुच्छेद 235 द्वारा प्रदत्त और अधीनस्थ न्यायालय पर लागू नियंत्रण इतना सर्वव्यापी है कि यह अधीनस्थ न्याय-पालिका को सभी प्रकार के कार्यपालिका के हस्तक्षेप से मुक्त रखता है और इस नियंत्रण को किसी भी प्रकार क्षति पहुंचाने से अधीनस्थ न्यायपालिका की स्वतंत्रता का ह्रास होगा।

(ख) यदि भर्ती अखिल भारतीय आधार पर की जाती है और बाहरी व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है तो उस राज्य की भाषा की अनभिज्ञता से बाधा उत्पन्न होगी।

(ग) बार के वरिष्ठ सदस्यों का जिला न्यायाधीश के रूप में भर्ती होना और उनकी नियुक्ति राज्य के बाहर होना यह निरुत्साह पैदा करने वाली बात होगी--क्योंकि इस समय सीधे भर्ती होने वाली सदस्यों की नियुक्ति राज्य के अन्दर ही होती है।

(घ) हिन्दी भाषी क्षेत्रों से भर्ती हुए लोगों का सेवा पर वर्चस्व होगा।

4.2 कलकत्ता उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश ने इन आशंकाओं के विरुद्ध बहुत ही प्रभावी उत्तर दिया है और उन्होंने अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के निर्माण को पूर्ण हृदय से समर्थन दिया है। उनके विचारों को अधिक स्वीकृति मिली है। जहां तक अधीनस्थ न्यायालयों पर से उच्च न्यायालयों के नियंत्रण के ह्रास की आशंका है--जैसा पहले भी कहा जा चुका है--किसी तथ्य पर आधारित नहीं है। यह नियंत्रण अक्षत और अव्यवधानिक रहेगा। भाषा ज्ञान की कमी के बारे में पहले ही बताया जा चुका है। आज यह भारत सरकार की घोषित नीति है, जिसे भारत के उच्चतम न्यायालय ने भी सहमति दी है और अनेक बार

अध्याय 5

अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना का औचित्य

5.1 इस समय यह प्रश्न किया जाना चाहिए। क्या वर्तमान परिस्थितियों में चार दशकों के पश्चात् जब उच्च न्यायालय के नीचे की न्यायिक सेवाओं को राज्यों द्वारा संघटित करने का भार सौंपने का निर्णय लिया गया था, ऐसी स्थिति आ गई है, जिससे वर्तमान ढांचे में परिवर्तन करना आवश्यक हो गया हो और अखिल भारतीय आधार पर न्यायिक सेवा स्थापित करना आवश्यक हो गया हो। 1958 से प्रारम्भ होकर[1] बीच के पूरे काल में[2] विशेषज्ञों का लगातार यह मत रहा है कि न्यायिक व्यवस्था को सुधारने, गति प्रदान करने और स्तरोन्नयन के लिए अखिल भारतीय न्यायिक सेवा जिसे भारतीय न्यायिक सेवा कहा जाय, स्थापित करना आवश्यक है। इन विशेषज्ञों के मत में बल और शक्तिशाली तर्क है और उनके मतों को काटने के लिये अकाट्य उत्तर भी दिये जाने चाहियें। प्रतिभाओं के आकर्षक में पर्याप्त कमी, राज्य राज्य की अलग अलग और, अनाकर्षक सेवा शर्तें, उच्च न्यायालयों का भर्ती आदि में निष्प्रभावी नियंत्रण, लोक सेवा आयोगों की इस मुद्दे पर विफलता और राज्य सरकारों द्वारा पूर्ण उपेक्षा से राज्य न्यायिक सेवाओं के गिरते स्तर के लिये कम उत्तरदायी नहीं है और इसी कारण उच्च न्यायालय से निचली अधीनस्थ न्यायिक सेवाओं में वर्तमान दुर्दशा है। उपलब्ध साक्ष्यों से पता चलता है कि वर्तमान स्थिति से सेवाएं पूर्णतः असन्तुष्ट हैं। सिविल न्यायाधीशों और महानगरीय मजिस्ट्रेटों द्वारा राजधानी में मूक प्रदर्शन स्थिति की भयावहता और गंभीरता का संकेत है। कभी कभी उनके द्वारा हड़तालें भी सुनाई पड़ती हैं। आप इस स्थिति में सुधार किस प्रकार सुधार करने जा रहे हैं? यदि स्थिति को इसी प्रकार रहने दिया गया और जैसा कानून आज है वही बना रहा तो केवल राज्य ही इस स्थिति में सुधार करने में सक्षम होंगे। राज्य न्यायिक सेवाओं पर किया गया व्यय—आयोजना पर अपव्यय, अनुत्पादक व्यय कहा जायगा जबकि करोड़ों रुपयों का एकत्रीकरण न्याय शुल्क द्वारा किया जाता है[3]। विधि और न्याय समाज के सभी वर्गों, नीचे से ऊपर तक के वर्गों के जीवन को प्रभावित करता है। अतः इस पर एक राष्ट्रीय विचार और दृष्टिकोण होना अत्यावश्यक है। निरर्थक वाद समय को विनष्ट करने वाला और अनुत्पादक व्यय होता है। न्यायपालिका की संरचना ने एक बहुत बड़ी सीमा तक इस अवांछित स्थिति की उत्पत्ति में योगदान किया है। इस पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से नये सिरे से विचार करना अत्यावश्यक है। यदि दूसरी अन्य सेवाएं, कार्यकुशलता और उत्पादकता में निश्चित सुधार के लिए स्थापित या निर्मित की जा सकती हैं तो न्यायिक सेवा क्यों नहीं की जा सकती। जिससे प्रत्येक व्यक्ति गंभीरता से प्रभावित होता है, यदि प्रशासनिक सेवा, पुलिस, सेवा, लेखा और अंकेक्षण सेवा, अनियंत्रण सेवा, वन सेवा, स्वास्थ्य सेवा आदि अखिल भारतीय स्तर पर अधिक प्रभावशील ढंग से अधिक भारतीय स्तर पर संघटित की जा सकती है तो न्यायिक सेवा के अखिल भारतीय स्तर पर संघठित किया जाने का प्रयत्न का औचित्य क्यों नहीं है? इस प्रकार की सेवा के संघटित किये जाने के विरुद्ध आपत्तियां जो केवल पिष्टपेषण मात्र हैं, पहले और आगे भी पूर्ण रूप से प्रभावी ढंग से उत्तरित हो चुकी हैं। न्यायिक सेवा को अखिल भारतीय स्तर पर संघठित किये जाने पर होने वाले लाभ छोटी मोटी हानियों से कहीं अधिक होगी। अतः प्रश्न के सभी पक्षों पर विचार करने के उपरान्त आयोग इस दृढ विचार का है कि अनुच्छेद 312 (3) के मानदंडों के भीतर अर्थात् जिला न्यायाधीश तक के स्तर तक, इस शब्द की जैसी परिभाषा अनुच्छेद 236 में की गयी

---

1. भारत का विधि आयोग चौदहवीं रिपोर्ट भाग 1 अध्याय 9 अनुच्छेद 59 पृष्ठ 184।
2. भारत का विधि आयोग सतहत्तरवी रिपोर्ट अध्याय 9 अनुच्छेद 3.6 और 3.6क पृष्ठ 32–33।
3. न्याय शुल्क का उत्सादन करने के लिए भारत सरकार द्वारा एकत्रित सामग्री।

4—2 M of L & J/87

होती है। भारतीय न्यायिक सेवा के निर्माण में सक्षम राजनैतिक तन्तु का प्रयोग हो रहा है, जिससे न्यायिक सेवा राजनैतिक नियंत्रण में आ जाएगा और उच्च न्यायालय का नियंत्रण समाप्त हो जाएगा। यह अधीनस्थ स्वतंत्र न्यायपालिका का मरण दिन होगा। इस तरह स्वतंत्र और व्यवहारिक आपत्तियां एक साथ कर दी गई हैं। पहली आपत्ति अल्पायु में भर्ती को लेकर है, क्योंकि इस सेवा में अनुभव, विधि का ज्ञान और सही दृष्टिकोण आवश्यक होता है। बार के वरिष्ठ और सुप्रतिष्ठित सदस्य न्यायिक सेवा स्वीकार करने के अनिच्छुक होते हैं, यह बात सुर्वमान्य है। उस वकील के लिए अल्प या अपर्याप्त वेतन आकर्षक नहीं हो सकता है, जिसने कमाई प्रारम्भ कर दी है और जानता है कि उसकी कोई सीमा नहीं है। यह न्यायिक सेवा के प्रत्येक स्तर के लिए है। यदि न्यायिक सेवा सामाजिक दायित्व का अनुभव करने वाले वकीलों के लिए किसी आदर्श की प्रेरणा नहीं देता है तो युवा लोगों को अल्पायु में ही इसके लिए भर्ती करने और उन्हें गहन प्रशिक्षण देने में क्या आपत्ति हो सकती है? थोड़े दिन का विधि व्यवसाय प्रभावी ढंग से प्रशिक्षित नहीं देता है और दूसरी ओर यदि जैसी कल्पना की गई है नए भर्ती किए गए लोगों को सेवा पूर्व गहन प्रशिक्षण दिया जाता है तो वे अच्छे न्यायाधीश हो सकते हैं। ऐसे भी देश हैं जहां न्यायाधीश होने के लिए विधि का व्यवसाय अनिवार्य अर्हता या पूर्व-आवश्यकता नहीं है[1]। निःसंदेह सामान्य विधि वाले देशों में न्यायाधीश होने के लिए विधि व्यवसाय में अनुभव अनिवार्य है। लेकिन अनुभव बताता है कि बार में अल्प काल का अनुभव जैसे दो या तीन वर्षों का अनुभव अच्छा न्यायाधीश बनने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण नहीं देता है। दूसरी और अधिक जोरदार आपत्ति है कि भारतीय न्यायिक सेवा का निर्माण एक सूक्ष्म राजनीतिक तंतु है, जिसके द्वारा न्यायिक तंत्र राजनैतिक नियंत्रण में छद्म रूप से आ जाएगा। क्या राज्य न्यायिक सेवा इस संभावना की शिकार है। यदि इसका उत्तर नहीं में है तो राजनैतिक हस्तक्षेप का अखिल भारतीय स्तर पर प्रवेश पाना असंभव है। फिर भी इसकी सुरक्षा उच्च न्यायालय का प्रभावशील नियंत्रण बनाए रख कर और राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग की स्थापना, जो स्कीम का अभिन्न भाग है, करके किया जा सकता है।

---

1. जुडीसियरी इन फ्रांस, डेविट अनोसभी भाग 8 (1981) जे० बी० सी० 1296।

जिला न्यायाधीश से अवर या कनिष्ट स्तर के किसी भी पद को, जैसा अनुच्छेद 236 में परिभाषित है, भारतीय न्यायिक सेवा में अंतर्विष्ट किये जाने को अनुच्छेद 312 (3) प्रतिषेध करता है। अतः सेवा की प्रारंभिक संरचना के समय वर्तमान पद जो, जिला न्यायाधीश, (अनुच्छेद 236 में यथा परिभाषित शब्द के समझे जाते हैं, भारतीय न्यायिक सेवा में अन्तर्विष्ट किये जाने के योग्य समझे जाने चाहिये। जिला न्यायाधीश, शब्द अनुच्छेद 236 (क) में इस प्रकार परिभाषित है :--

> "(क) जिला न्यायाधीश पद के अन्तर्गत नगर सिविल न्यायालय का न्यायाधीश, अपर जिला न्यायाधीश, संयुक्त जिला न्यायाधीश, सहायक जिला न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, मुख्य प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट, अपर मुख्य प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश, अपर सेशन न्यायाधीश और सहायक सेशन न्यायाधीश हैं।"

जिला न्यायाधीश काडर तक की न्यायिक सेवा के विभिन्न स्तरों के नाम अलग अलग राज्यों में अलग अलग हैं। फिर-भी राज्यों में से अधिकांश ने राज्य न्यायिक सेवा को विभाजित कर उच्चतर या वरिष्ठ न्यायिक सेवा अथवा अधीनस्थ या अवर न्यायिक सेवा नाम दिया है। अधिकतर राज्यों में मूल स्तर का काडर मुंसिफ या जिला मुंसिफ (जैसे तमिलनाडु में) और सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ विभाग) (जैसे महाराष्ट्र और गुजरात में) कहलाता है। चूंकि प्रस्तावित भारतीय न्यायिक सेवा में राज्य न्यायिक सेवा से भी प्रोन्नति किये जाने का कोटा होगा, यह अत्यावश्यक है कि भारतीय न्यायिक सेवा से अवर न्यायिक सेवा के नाम और काडर को युक्तिसंगत बनाया जाय। इसे राज्य न्यायिक सेवा कहा जा सकता है। पहले दी गई संस्तुति को[1] ध्यान में रखते हुये राज्य न्यायिक सेवा में नया प्रवेश करने वाले काडर को सिविल न्यायाधीश (कनिष्ट काडर) और न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी नाम दिया जाना चाहिये। इस काडर के व्यक्ति को सिविल वादों के लिये 20000 रु० से अधिक की अधिकारिता नहीं दी जानी चाहिये और अपराधिक वादों के लिये दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 द्वारा प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट की समस्त शक्तियां प्रदान की जानी चाहिये। यदि धन संबंधी सीमा को भूतकाल की विरासत समझा जाता है तो न्यायाधिकारिता को संघठित और विहित करने का दूसरा मार्ग है कि पदस्थ व्यक्ति के सेवा में प्रवेश के समय वादों के शीर्षक सुनिश्चित कर दिये जाने चाहिये। प्रोन्नति का दूसरा स्तर सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ विभाग), लघुवाद न्यायालय का न्यायाधीश/महानगरीय मजिस्ट्रेट का होना चाहिये। पदाभिधान से संरचना के अन्तर्गत कार्य के समनुदेशन के अनुसार होना चाहिये। उपयुक्त पदाभिधान के पद राज्य न्यायिक सेवा के पदनाम से समझा जाना चाहिये।

ऐसे पद जिनके पदनाम जिला न्यायाधीश, सहायक जिला न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, मुख्य महानगरीय मजिस्ट्रेट, सेशन न्यायाधीश, अतिरिक्त न्यायाधीश और सहायक सेशन न्यायाधीश हों उन्हें भारतीय न्यायिक सेवा में अन्तर्विष्ट कर दिया जाना चाहिये। ये पदनाम सिविल विधि संहिता, दंडविधि संहिता, प्रेसीडेन्सी और प्रान्तीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम आदि अनेक अधिनियमों से लिये गये हैं जो कार्य के अनुसार पदनाम हैं।

राज्य सभा के भारतीय न्यायिक सेवा के गठन के प्रस्ताव के अनुसार अधिनियमित होने वाले कानून में कोई सुनिश्चित तारीख जिसे नियत दिन कहा जाय, होना चाहिये जिस दिन भारतीय न्यायिक सेवा का सृजन किया जाएगा। सेवा के सृजन के प्रारम्भ के समय अनेक राज्यों में उच्चतर न्यायिक सेवा के अधीन पदासीन व्यक्ति और जहां उच्चतर न्यायिक सेवा नहीं हैं वहां अनुच्छेद 236 में दिये गये पदाभिधान या उसके समकक्ष पदों पर आसीन व्यक्तियों को भारतीय न्यायिक सेवा में सम्मिलित किया जाना चाहिये। वे सभी

---

1 भारत का विधि आयोग---चौदहवीं रिपोर्ट भाग-1, अध्याय 9, अनुच्छेद 21, पृष्ठ 169।

है कि प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय के नीचे, जिसे अधीनस्थ न्यायिक सेवा कहा जाता है, अखिल भारतीय स्तर पर संगठित की जानी चाहिये। इसके अर्थ होंगे संघ सरकार और राज्यों के लिये समान रूप से सेवा में संगठित की जानी चाहिये जिसे भारतीय न्यायिक सेवा कहा जाय।

सेवा के गठन के लिए प्रारम्भिक पग

5.3 यह बात स्वीकार करते हुए कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता हमारे संविधान का मूलभूत आधार है और इसलिए संविधान के निर्माताओं ने न्यायपालिका को बाह्य दबाव और हस्तक्षेप से बचाये रखने के लिए प्रभावी व्यवस्थाएं की थी। किन्तु उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायपालिका के लिये यह व्यवस्था भाग 6 के अधीन इतनी प्रभावी नहीं की गई है। (भाग 6 अधीनस्थ न्यायपालिका से संबंधित है) इस संबंध में थोड़े से उपबंधों के पीछे अवधारणा यह है कि अधीनस्थ न्याय पालिका की स्वतंत्रता के उच्छेदन के लिये किये जाने वाले प्रयत्नों के विरुद्ध रखवाली उच्च न्यायालय करेगा। इन थोड़े से उपबंधों को जो अनुच्छेद 233, 234, 235 और 236 में है, उच्च न्यायालय के अनेक निर्णयों से जीवन मिला है। एक मत ऐसा भी था कि भारतीय न्यायिक सेवा की संरचना के विस्तृत प्रावधान संविधान के भाग 6 अध्याय 6 में किये जाने चाहिये थे। जैसा हुआ सो हुआ, अब समय आ गया है भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के लिये प्रभावी और ठोस पग उठाये जाने चाहिये।

अनुच्छेद 233 में प्रदत्त है कि किसी भी राज्य में जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति और उनकी पोन्नति उस राज्य के राज्यपाल से विचार विमर्श के पश्चात् उस राज्य की अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालय करेगा। अनुच्छेद 233 (2) में प्रदत्त है कि कोई भी ऐसा व्यक्ति जो पहले से संघ सरकार की या राज्य सरकार की सेवा में नहीं रहा है, जिला न्यायाधीश के पद के लिये नियुक्त होने का अर्ह होगा यदि वह सात वर्षों से अधिक एक अधिवक्ता या वकील के रूप में रहा है और उसकी नियुक्ति की संस्तुति उच्च न्यायालय द्वारा की जाती है। अनुच्छेद 234 द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि राज्य की न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीश के अतिरिक्त किसी व्यक्ति की नियुक्ति राज्य के राज्यपाल द्वारा उसके बनाये नियमों के अनुसार राज्य के लोकसेवा आयोग और इस राज्य की अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालय से विचार विमर्श के पश्चात की जाएगी। भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के लिये इन दोनों अनुच्छेदों का उपयुक्त रीति से संशोधन करना आवश्यक होगा। अनुच्छेद 234 को राज्य न्यायिक सेवा में भी नियुक्ति के लिये राज्य लोक सेवा आयोग को हटाने के लिये संशोधित करना पड़ेगा। यह स्मरणीय है कि संशोधन साधारण अधिनियम द्वारा किया जायगा। ऐसा इसलिए कि राज्य सभा के संकल्प के अनुसार अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन का कानून बनाने के लिये अनुच्छेद 312 (4) यह उपबंध करता है कि उसमें उस कानून के उपबंधों के क्रियान्वयन के लिये अध्याय 6 भाग 6 को संशोधित किया जा सके। इसे अनच्छेद 368 के उद्देश्यों के लिये संविधान का संशोधन नहीं समझा जायगा।

अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के गठन इसकी प्रारंभिक संरचना, भविष्य में भर्ती और सेवा में भविष्य में भर्ती करने वाले निकाय के गठन के लिये अनुच्छेद 233 और 234 में यथोचित संशोधन करना होगा। राष्ट्रपति को राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग की संस्तुति पर भारतीय न्यायिक सेवा के सदस्यों की नियुक्ति करने के लिये शक्ति प्रदान करने हेतु अनुच्छेद 233 को संशोधित करना होगा। अनुच्छेद 234 को भी पूर्वोक्त कारण से संशोधित करना होगा।

सेवा के सृजन का प्रारम्भ

5.3 अनुच्छेद 312 (3) में दिये हुये उपबंधों को दृष्टि में रखकर बहुधा दिया जाने वाला सुझाव कि भारतीय न्यायिक सेवा में मूल से लेकर जिला न्यायाधीश तक केवल दो स्तर होने चाहिये, अस्वीकार किया जाना चाहिये क्योंकि यह तर्क संगत नहीं है।

में से न्यायोचित अनुपात प्रतियोगी परीक्षा और राज्य न्यायिक सेवा से प्रोन्नति करने वालों के लिये आरक्षित रखा जाय। न्यायोचित अनुपात का विचार करते समय न्यायिक सेवा की अनुपम विशेषता ध्यान में रखी जानी चाहिये और वह विशेषता है कि बार के भी कुछ वरिष्ठ सदस्य सीधे न्यायाधीश बनाये जाते हैं, यह ध्यान में रखना होगा। जिला न्यायाधीशों के पद के लिये बार के अनुभवी सदस्यों की उपलब्धता का स्रोत सदैव ही खुला रखा जाना चाहिए जिससे सेवायें धनी हो सकें। अतः हमें भर्ती के इस तीसरे स्रोत को भी ध्यान में रखना चाहिये। फिर भी चूंकि भारतीय न्यायिक सेवा के पदों का अच्छा प्रतिशत प्रतियोगी परीक्षा द्वारा सीधे भर्ती द्वारा आरक्षित किया जा रहा है। अतः बार के अनुभवी सदस्यों के जिला न्यायाधीश पद पर सीधे भर्ती के लिये पदों का आरक्षण अलग अलग राज्यों में वर्तमान स्थिति को दृष्टि में रखकर किया जाना चाहिये। अलग अलग तीन स्रोतों से पदों के लिये भर्ती के प्रश्न का गंभीरता पूर्वक परीक्षण करते हुये हम इसके लिये अनेक सुझाव दे रहे हैं। मुख्य मंत्रियों, विधि मंत्रियों और अन्य उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों की विधि और न्याय मंत्रालय द्वारा आयोजित सभा में भारत सरकार द्वारा प्रस्तावित अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की संरचना के लिये प्रस्तुत स्कीम के प्रारूप में यह प्रस्तावित किया गया था कि भारतीय न्यायिक सेवा के लिये मंजूर पदों में से 50% पद प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा सीधे भर्ती किया जाना चाहिये और शेष 50% राज्य न्यायिक सेवा से प्रोन्नतियों द्वारा। यह दो सेवाओं के मध्य गणितीय समविभाजन के वर्तमान तथ्य की उपेक्षा कर देता है कि प्रत्येक राज्य में जिला न्यायाधीश के काडर में सीधे भर्ती के लिये बार के अनुभवी और वरिष्ठ सदस्यों की भर्ती के लिये उपबन्ध बनाये रखे हैं। ऐसे अनुभवी सदस्यों की प्रतियोगी परीक्षाओं में भाग लेने की संभावना नहीं है। भर्ती का यह फलदायी स्रोत इस आयोजना को पूर्णतः स्वीकार करने से समाप्त हो जायेगा। मुख्य न्यायाधीश श्री पी० डी० देसाई की अध्यक्षता में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने, जिसने इस संबंध में विस्तृत टीका दी है, सुझाव दिया है कि भारतीय न्यायिक सेवा के पदों के योग का 50% राज्य न्यायिक सेवा के सदस्यों की प्रोन्नतियों से भरा जाना चाहिये, 25% प्रतियोगी परीक्षाओं से और 25 बार के सदस्यों में से चयन द्वारा भरा जाना चाहिये। यह सुझाव तो भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन के पीछे उद्देश्य पर ही आघात करता है। भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन का उद्धेश्य है देश के विश्वविद्यालयों से निकले युवा और सक्षम स्नातक न्यायपालिका की ओर आकर्षित हों जिससे प्रशासनिक सेवा की ओर जाने वाले प्रतिभाशाली व्यक्तियों में से सर्वोत्तम लोग भारतीय न्यायिक सेवा की ओर आकृष्ट हों। वे स्थानीय धारणाओं, जाति, समुदाय के विभाजन और स्थानीय आकर्षणों से मुक्त होंगी। भारतीय न्यायिक सेवा में भर्ती के लिये केवल 25% पद युवा प्रतिभाशाली नये स्नातकों के लिये निर्धारित करने से और 75% पद वर्तमान भर्ती की पद्धति द्वारा भरे जाने के इस सुझाव से अधीनस्थ न्यायिक सेवाओं के पुनर्योवन-प्राप्ति का उद्धेश्य पूरा नहीं होगा। इस सुझाव का उद्गम इस तथ्य से प्रतीत होता है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा का 75% प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा और शेष 25% राज्य सेवा से प्रोन्नतियों द्वारा भरा जाता है। विधि आयोग ने सुझाव दिया है कि 40% पद प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा सीधे भर्ती के लिये आरक्षित होना चाहिये, शेष 60% का 30% पद राज्य न्यायिक सेवाओं के सदस्यों के प्रोन्नति से भरे जाने चाहिये और 30% पद बारे के पर्याप्त वरिष्ठता और श्रेष्ठता प्राप्त सदस्यों द्वारा भारा जाना चाहिये[1]। इस संबंध में विभिन्न अनुपातों का सुझाव दिया गया है जैसे 66 2/3% प्रोन्नति और 33 1/3% सीधे भर्ती द्वारा। यह सुझाव कलकत्ता के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का था।

मामले के सभी पक्षों पर ध्यान देते हुये और विभिन्न हितों के बीच समन्वय की भावना से आयोग का मत है कि भारतीय न्यायिक सेवा में मंजूर किये हुये पदों के योग का 40% प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा परीक्षायें जिसे राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग कहलाने वाली संस्था संचालित करे---भरा जाना चाहिये। शेष 60% पदों में से 40% राज्य

[1]भारत का विधि आयोग---चौदहवीं रिपोर्ट भाग-1 अध्याय 9 अनुच्छेद 67 पृष्ठ 187।

भारतीय न्यायिक सेवा के सदस्य प्रारम्भिक संरचना काल में ही हो जाएगी। पदों की समानता के सम्बन्ध में कोई विवाद होने पर मामले को राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग को सुपुर्द कर दिया जाना चाहिये जिसका निर्णय अंतिम होना चाहिये।

एक सुझाव यह भी था कि राज्य उच्चतर न्यायिक सेवा के सदस्यों का भी अथवा अनुच्छेद 236 में उल्लिखित विभिन्न पदनाम वाली सेवाओं में नियुक्त व्यक्तियों की जांच होनी चाहिये जिससे अक्षम और अयोग्य व्यक्तियों को निकाला जा सके। इससे अवश्य ही उन लोगों में ईर्ष्या होगी, क्योंकि तब तक ऐसे लोग प्रोन्नति होकर उस स्तर तक पहुंच चुके होंगे जिसे उच्चतर न्यायिक सेवा विभिन्न पदनाम से पुकारा जाता है। जहां इस प्रकार के पदनाम नहीं हैं, हमारे विश्लेषण से पता लगता है कि इस पदनाम के पद पर नियुक्त व्यक्ति प्रोन्नति की दूसरी अवस्था में आये हैं। अतः सेवा की संरचना के प्रारंभ में इस प्रकार की जांच की आवश्यकता नहीं है। राज्य न्यायिक सेवा से भारतीय न्यायिक सेवा में आगमन को सुगम बनाने के लिये यह उपयुक्त है कि अनुच्छेद 236 में दिये जिला न्यायाधीश शब्द के अन्तर्गत आने वाले समस्त पदनाम बनाये रखे जाय। केवल इतना परिवर्तन किया जाय कि मुख्य प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट और अतिरिक्त मुख्य प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट[1] को मुख्य महानगरीय मजिस्ट्रेट और अतिरिक्त मुख्य महानगरीय मजिस्ट्रेट क्रमशः कर दिया जाय। उसके पश्चात् तो ऐसे राज्यों में अनुच्छेद 236 में दिये नामों के अनुसार समान पदनाम रखने होंगे क्योंकि भारतीय न्यायिक सेवा में सभी पद अन्तर्विष्ट हो जाएंगे। भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना के लिये कानून में आवश्यक प्रावधानों का अनुमोदन किया जायगा। इससे सेवा के सदस्यों की प्रारम्भिक संख्या भी निश्चित हो जाएगी, क्योंकि यह जिला न्यायाधीश, शब्द के अन्तर्गत आने वाले सभी पदों पर नियुक्त सदस्यों का योग होगा। यह संख्या भारत के राष्ट्रपति द्वारा भविष्य में सेवा आवश्यकताओं के अनुसार घटायी या बढ़ायी जा सकेगी जो राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग से विचार विमर्श के पश्चात् प्रत्येक पांच वर्ष के अन्तराल पर सेवा में लगे लोगों की संख्या और सेवा की आवश्यकताओं का पुनर्विलोकन करेगा। पुनर्विलोकन राज्यशः होना चाहिये और प्रत्येक राज्य के काडर की संख्या उस राज्य में कार्यभार, निबटान की गति, बकाया और विवादों के निपटान में लगने वाले समय आदि का विचार कर निश्चित किया जाना चाहिये।

सेवा के लिये भविष्य में भर्ती

5.4 प्रत्येक राज्य ने राज्य न्यायिक सेवा में भर्ती के लिये नियम बना रखे हैं और उन्हें लागू भी कर दिया है। अनुच्छेद 234 में उपबन्धों के अधीन राज्य सरकार द्वारा राज्य न्यायिक सेवा के सबसे निचले स्तर प्रवेश काडर के लिये साधारणतया भर्ती की जाती है। इसे राज्य लोक सेवा आयोग और उस राज्य के अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालय से विचार विमर्श के पश्चात् किया जाता है। राज्य न्यायिक सेवा जिला न्यायाधीश के पद तक प्रोन्नति के उर्ध्वगामी अवसर प्रदान करती है। सभी राज्यों में जिला न्यायाधीश पद के लिये कुछ सीधे भर्ती होती है। सीधे भरती का प्रतिशत राज्य राज्य में भिन्न होता है। लेकिन ऐसे भी मामलों हैं जहां जिला न्यायाधीश के काडर के लिये भर्ती 50 प्रतिशत तक होती है। किसी भी दशा में किसी भी राज्य में यह प्रतिशत 25 से कम नहीं है। यह बहुत अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा कि भारतीय न्यायिक सेवा में प्रतियोगी परीक्षा द्वारा ही 100 प्रतिशत भर्ती करने का उपबन्ध हो। ऐसी पहुंच राज्य न्यायिक सेवा के लिये अनिष्टकारी होगी और राज्य न्यायिक सेवा में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति के लिये हतोत्साह जनक होगी। आपत्तियों की सुसंगति और उपयुक्तता का परीक्षण करते समय कि भारतीय न्यायिक सेवा का सृजन अधीनस्थ न्यायिक सेवा के सदस्यों में कुंठा उत्पन्न करेगा। यह इंगित किया गया था भारतीय न्यायिक सेवा के पदों का एक अच्छा भाग राज्य न्यायिक सेवा के सदस्यों के लिये आरक्षित रखा जायगा। अतः यह अत्यावश्यक है कि पदों

1. दंड प्रक्रिया संहिता 1973 धारा 6।

के लिये पात्रता न्यूनतम डिग्री ही है। अतः यद्यपि हम सुझाव देने वालों की चिंता की प्रशंसा करते हैं, फिर भी विधि की द्वितीय श्रेणी की डिग्री का निर्धारण पात्रता के लिये करते हैं।

जैसी स्कीम है उसमें कोई भी यथोचित सेवारत व्यक्ति विधि की स्नातक की डिग्री 22 वर्ष की आयु में प्राप्त कर लेगा। ऐसे व्यक्ति को प्रतियोगी परीक्षा में बैठने की अनुमति देने में कुछ भी आपत्ति जनक बात नहीं है। किन्तु आयु की ऊपरी सीमा निर्धारित कर दी जानी चाहिये जिसके आगे कोई भी परीक्षाओं में बैठने के लिये पात्र नहीं होगा। मामले के सभी पक्षों पर विचार करने के उपरान्त यह आयु सीमा 30 वर्ष तक निश्चित की जानी चाहिये। भारतीय न्यायिक सेवा आयोग के परामर्श से सरकार अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों; महिलाओं और अन्य अक्षम वर्गों के लिये ऊपरी आयु सीमा में ढील, सेवा में आरक्षण और संबंधित मामलों के लिये आदेश जारी करेगी।

प्रोन्नति के आधार पर भर्ती

5.6 राज्य न्यायिक सेवा के वे सदस्य जो दस वर्ष तक सेवा में रह चुके हैं, भारतीय न्यायिक सेवा में प्रोन्नति की पात्रता के लिये योग्य समझे जायेंगे। प्रत्येक राज्य के लिये भारतीय न्यायिक सेवा के मंजूर पदों में से 40% राज्य न्यायिक सेवा से प्रोन्नति द्वारा भरे जायेंगे। योग्य लोगों को प्रोन्नति के लिये चयन करने के लिये भारतीय न्यायिक सेवा आयोग के सदस्यों में से प्रत्येक राज्य के लिये दो सदस्यों वाली एक छोटी समिति का गठन किया जायेगा। इस समिति में उस राज्य के अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश प्रोन्नति के अभ्यर्थियों के चयन हेतु सहयोजित किये जायेंगे। प्रोन्नति का आधार लिखित परीक्षा और मौखिक परीक्षा होगी। लिखित परीक्षा अखिल भारतीय आधार पर होगी। पूर्वोक्त समिति मौखिक परीक्षण का संचालन करेगी। एक समय यह सुझाव दिया गया कि राज्य से संबंधित उच्च न्यायालय ही संस्तुति करने का कार्यभार संभाले। किन्तु बिना किसी दुर्भाव यह कहना पड़ रहा है कि इस मार्ग से आलोचनायें हो सकती हैं, कि क्षेत्रीयता, संकीर्णता और किन्हीं किन्हीं राज्यों में जाति वाद को बढ़ावा मिल रहा है। इस प्रश्न को वादों और विवादों से दूर रखने के लिये मौखिक परीक्षा पूर्वोक्त समिति द्वारा ही संचालित होनी चाहिये। राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा राज्य न्यायिक सेवा के सदस्यों की बनायी जाने वाली वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट पर भी विचार किया जाना चाहिये। सभी तीनों लिखित परीक्षा मौखिक परीक्षा और गोपनीय रिपोर्ट के आधार पर अभ्यर्थियों का चुनाव अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के लिये किया जाना चाहिये। कोई अत्यन्त गुणवत्ता की बात न हो तो उनकी वरिष्टता काडर में प्रोन्नति के दिन के आधार पर ही बनायी जानी चाहिये।

बार के सदस्यों से सीधे भर्ती

5.7 न्यायिक सेवा के शेष 20% पद बार के उन अनुभवी और वरिष्ठ सदस्यों द्वारा भरा जाना चाहिये जिनका विधि व्यवसाय कम से कम सात वर्ष का हो। यद्यपि यह संवैधानिक आवश्यकता है यह वांछनीय होगा कि इस क्षेत्र से भर्ती उन सदस्यों से की जानी चाहिये जिनका विधि व्यवसाय 10 वर्षों या उससे अधिक का है। यह चयन साक्षात्कार के आधार पर होना चाहिये जिसे पूर्वोक्त अनुच्छेद में वर्णित समिति संचालित करे।

बार के सदस्यों में से चयन के लिये एक सुझाव था कि ऊपरी आयु सीमा 50 वर्ष निश्चित कर दी जानी चाहिये। हमारे मत से ऊपरी आयु सीमा के निर्धारण की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि बार का कोई अनुभव प्राप्त वरिष्ट सदस्य भारतीय न्यायिक सेवा का सदस्य किसी भी अवस्था में होना चाहता है तो उसके लिये कोई बाधा नहीं होनी चाहिये और उस इस कारण अनर्ह नहीं किया जाना चाहिये कि वह बहुत आयु प्राप्त है। अनुभव जितना ही परिपक्व होगा उतनी ही अच्छी सेवा वह कर सकेगा लेकिन 35 वर्ष से

न्यायिक सेवा से प्रोन्नति सदस्यों द्वारा, जिसकी संस्तुति उच्च न्यायालय राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग द्वारा राज्य को आबंटित कोटा को ध्यान में रखते हुये करें, भरा जाना चाहिये। बाकी 20% पद के लिये सीधे भर्ती बार के वरिष्ठ और अनुभवी सदस्यों द्वारा जिनकी विधि व्यवसाय सात वर्ष से कम न हो उच्च न्यायालय की संस्तुति पर राष्ट्रीय न्यायिक सेवा के सदस्यों द्वारा किया जाना चाहिए ।

कोटा के नियम के दृढ़ पालन से सेवाओं को अकथनीय हानि हुई है। इस संबंध में लचीलापन होना चाहिये अतः भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन करने वाली विधि में यह अवश्य प्रावधान होना चाहिये कि अनुमोदित कोटा का नियम सेवा की आवश्यकताओं को देखकर ही यथा संभव किया जाना चाहिये। यदि किसी श्रोत के लिये निर्धारित कोटा उपलब्ध नहीं होता है तो शेष श्रोतों से उसकी भर्ती की जानी चाहिये और उस साल कोटा में वृद्धि कर दी जानी चाहिये। रिक्त स्थानों को आगे बढ़ाने की प्रथा से बचना चाहिये।

भारतीय न्यायिक सेवा में तीन श्रोतों से इस प्रकार भर्ती की जानी है :—

(1) मंजूर पदों का 40% सीधे प्रतियोगी परीक्षा द्वारा भर्ती किया जाना चाहिये ;

(2) मंजूर पदों का 40% राज्य न्यायिक सेवा से प्रोन्नतियों द्वारा भरा जाना चाहिये।

(3) मंजूर पदों का 20% बार के वरिष्ठ अनुभवी सदस्यों द्वारा जिनका विधि व्यवसाय 7 वर्षों से कम न हो, भरा जाना चाहिये।

सीधी भर्ती

5.5 भारतीय न्यायिक सेवा के 40% पद सीधी भर्ती द्वारा प्रतियोगी परीक्षा और मौखिक परीक्षा के परिणाम के आधार पर भरे जाएंगे। राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग प्रति वर्ष प्रतियोगी परीक्षा के लिये सभी प्रबन्धक करेगा। कोई भी व्यक्ति जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से विधि में स्नातक की डिग्री प्राप्त कर चुका है परीक्षा में बैठने के लिये उपयुक्त होगा। इस समय उन विश्वविद्यालयों को छोड़कर जहां उच्चतर माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् पांच वर्ष का पाठ्यक्रम है, कोई भी व्यक्ति किसी भी विषय में स्नातकीय परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद विधि की डिग्री प्राप्त कर सकता है, किन्तु इससे वकील के रूप में व्यवसाय करने की अर्हता नहीं प्राप्त होती है। अधिवक्ता के रूप में भर्ती होने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को एक वर्ष का पाठ्यक्रम करने के पश्चात् डिग्री प्राप्त करनी होती है, जिसे विधि की विशेष डिग्री कहते हैं। भारत की बार कौंसिल द्वारा प्रचलित किये जा रहे हैं, पांच वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम तक किसी को भी जो अधिवक्ता के रूप में कार्य करने के लिये विधि की डिग्री की इच्छा रखता है उसे सेकेन्डरी स्कूल सर्टिफिकेट परीक्षा और किसी विषय में तीन वर्ष की डिग्री और उसके पश्चात् तीन वर्ष विधि की डिग्री का पाठ्यक्रम करना होता है। इस तरह उसे सेकेन्डरी स्कूल परीक्षा के पश्चात् छः वर्ष व्यय करने होते हैं। भारत की बार कौंसिल द्वारा प्रवर्तित नये पाठ्यक्रम में पांच वर्ष का डिग्री पाठ्यक्रम हायर सेकेन्डरी परीक्षा के पश्चात है। इस तरह उसके एक वर्ष नये प्रणाली के अन्तर्गत बच जाते हैं। किसी भी व्यक्ति ने जिसने विधि की द्वितीय श्रेणी की डिग्री प्राप्त कर ली है भारतीय न्यायिक सेवा में भर्ती के लिये ली जाने वाली प्रतियोगी परीक्षा में बैठने का पात्र होगा। केवल विधि की डिग्री की ही पात्रता के निष्कर्ष के रूप में स्तुति करने में और वह भी द्वितिय श्रेणी जो स्वयं ही न्यूनतम अर्हता प्रदान करने वाला मापदंड है, हम एक बहुत बड़े विधि वक्ता के सुझाव को भूल नहीं सकते हैं जिसके अनुसार विधि में प्रथम श्रेणी की डिग्री न्यूनतम अर्हता होनी चाहिये। एक दूसरा सुझाव था कि प्रतियोगी परीक्षा में भाग लेने की पात्रता प्राप्त करने के लिये विधि में मास्टर की डिग्री आवश्यक होनी चाहिये। यद्यपि ये बड़े विचारणीय सुझाव हैं जिसके द्वारा उच्चतर प्रतिभाएं सेवा में आती किन्तु हमें भय है कि इसे चयन का क्षेत्र अनावश्यक रूप से संकुचित हीं नहीं अपितु कठिन भी हो जाएगा। भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के लिये प्रतियोगी परीक्षाओं

प्राप्त की जायें जिसकी सलाह चयन प्रक्रिया में निर्णयात्मक तत्व के रूप में होना चाहिये[1]। बार के सदस्यों में से चयन के मामले में अनुच्छेद 233 में यथा अपेक्षित उच्च न्यायालय का कथन ही सर्वोपरि होता है। यह याद दिलाना आवश्यक नहीं जान पड़ता है कि अनुच्छेद 217 उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को सर्वोपरि स्थान प्रदान करता है और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के चयन के मामले में भारत के मुख्य न्यायाधीश को सर्वोपरि महत्व प्रदान करता है। अन्त में, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के चयन के मामले में यह शक्ति राष्ट्रपति को प्रदान की गई है कि वह किसी भी व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श के उपरान्त जिसे वह आवश्यक समझे, नियुक्त करे। उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के मामले में उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को छोड़कर उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों से परामर्श आवश्यक होता है (देखें संविधान का अनुच्छेद 124)। अतः यह कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती है कि न्यायिक सेवाओं में नियुक्ति के मामले में अनेक स्तरों पर न्यायिक कार्य में लगे कार्मिक इस कार्य में निर्णयात्मक भूमिका निभायेंगे वरन् उन्हें इस कार्य के लिये सर्वोपयुक्त समझा जाना चाहिये। अतः यदि एक बार भारतीय न्यायिक सेवा के लिये सीधे भर्ती करने के लिये प्रतियोगी परीक्षाओं का संचालन करने का कार्य संघ लोक सेवा आयोग को सौंप दिया जाता है तो यह सर्वोपरि महत्व देने का कार्य समाप्त हो जाएगा। क्योंकि तब केवल न्यायिक सेवा से अन्य कार्मिक ही न्यायिक सेवा में भर्ती के लिये अभ्यर्थियों की संस्तुति करेंगे जो संविधान की भावना के विपरीत होगा (अनुच्छेद 124, 217, 233 और 235)। अतः यह अनिवार्य रूप से आवश्यक है कि किसी ऐसे संगठन के जिसमें न्यायाधीश अधिवक्तागण और विधि शास्त्री हों भारतीय न्यायिक सेवा में भर्ती के लिये परीक्षायें संचालित करने और मौखिक परीक्षा लेने का कार्यभार सौंपा जाय। इस प्रकार के संगठन के सृजन के उपरान्त सेवाओं के प्रबन्ध का भी कार्य भार दिया जाय। अतः यह संस्तुति की जाती है कि राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग का सृजन परीक्षायें संचालित करने के लिये किया जाय। परीक्षायें संचालित करने के लिये राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग को एक पाठ्यक्रम तैयार करना होगा। राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग जो विशेषज्ञों का संगठन होगा उसके ऊपर विस्तृत पाठ्यक्रम प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व छोड़ते हुये यह कहना अच्छा होगा कि पाठ्यक्रम में :

(क) भारत का संविधान;

(ख) विधि की समाज शास्त्र और अन्य विषयों से परस्पर संबंध;

(ग) प्रक्रिया--सिविल और दांडिक;

(घ) विधिक सहायक;

(ङ) न्याय प्रणाली के लक्ष्य, सुलह, प्रणाली और विवादों का जल्द निपटान और सहभागी न्याय;

(च) न्यायिक विवेक, दंड देने की प्रक्रिया, अन्तरिम आदेश हर्जाना और

(छ) न्यायालय व्यवस्था की आधुनिक तकनीक, कारागार, जमानत बार, सामाजिक कार्यकर्ता और विधि शिक्षा संस्थानों से परस्पर संबंध,

के विषय या प्रश्नपत्र भी सम्मिलित किये जायं। पूर्वोक्त सूची केवल दृष्टांत के लिए है। यह संपूर्ण नहीं कही जा सकती है। जो व्यक्ति लिखित परीक्षा में सम्पूर्ण अंकों में से 60% अंक प्राप्त करता है, वह मौखिक परीक्षा के लिये आहूत किया जायगा। मौखिक परीक्षा 100 अंकों की होगी। लिखित परीक्षा और मौखिक परीक्षा के समन्वित परिणाम के स्वरूप एक योग्यता सूची प्रस्तुत की जाएगी।

---

1. अशोक कुमार यादव वि. स्टेट आफ हरयाणा (1985) 4 सुप्रीम कोर्ट केसेज पृष्ठ 457।

कम आयु के सदस्य को साधारणतया बार से सीधे भारतीय न्यायिक सेवा के लिये चयन नहीं किया जाना चाहिये।

विधि व्यवसाय की काल सीमा का और आयु सीमा का निर्धारण करते समय और तीनों स्त्रोतों से भर्ती करते समय हमें यह विचार करना पड़ रहा है कि सेवा में प्रवेश के समय आयु की असमानता ऐसी नहीं होनी चाहिये कि उच्च न्यायालय के लिये अगली पदोन्नति के लिये अनुचित प्रतियोगिता का प्रादुर्भाव हो।

परीक्षा संचालित करने के लिये आधार भूत संरचना

5.8 दूसरा पक्ष जिसकी ओर ध्यान देना आवश्यक है वह है ऐसा संगठन जिसे परीक्षाओं को संचालित करने का ही भार न दिया जाय वरन् वह प्रबन्ध करने की स्कीम के सभी पक्षों को प्रभाव पूर्ण ढंग से क्रियान्वित करने के लिये उत्तर दायी हो सेवा का प्रारम्भ और प्रबन्ध करने तक ही नहीं किन्तु स्कीम के सभी पक्षों को प्रभाव पूर्ण ढंग से क्रियान्वित करने के लिये उत्तरदायित्व दिया जा सके। संघ लोक सेवा आयोग, कुछ लोगों के मतानुसार जिसे विभिन्न अखिल भारतीय परीक्षाओं को संचालित करने की विशेषता प्राप्त है, यह कार्य सम्पन्न कराने के लिये पूर्ण सक्षम है। एक ऐसा भी मत था कि अखिल भारतीय न्यायिक सेवा अलग से नहीं ली जानी चाहिये वरन् इसे भारतीय प्रशासनिक सेवा और अन्य संबंधित सेवाओं में भर्ती के लिये परीक्षा के साथ ही लिया जाना चाहिये जिसमें विधि के कुछ विशेष विषय होने चाहिये।

न्यायिक सेवा की अपनी एक विशेषता है। यह सेवा नहीं अपितु यह जीवन का एक दृष्टिकोण है। यह सभी का मत रहा है कि जिन्होंने न्यायपालिका की सेवा की है वह ही न्यायापालिका में भर्ती के लिये सबसे अधिक उपयुक्त होते हैं। यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 234 में यह प्रदत्त है कि राज्य की न्यायिक सेवा के लिये (जिला न्यायाधीश के काडर को छोड़कर), भर्ती राज्य पाल द्वारा उस राज्य के लोक सेवा आयोग और उस राज्य के उच्च न्यायालय से विचार विमर्श, के उपरान्त किया जायगा यह न्यायिक दृष्टि से देखा गया है कि यद्यपि राज्य न्यायिक सेवा भर्ती के लिये लोगों की लोक सेवा आयोग द्वारा संस्तुति की गई है, सामान्यतया राज्य न्यायिक सेवा के लिये अभ्यर्थियों के चयन के समय लोक सेवा आयोग उच्च न्यायालय के किसी वर्तमान या पूर्व न्यायाधीश की विशेषज्ञ के रूप में आमंत्रित करता है और उस विशेषज्ञ, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की सलाह जो मौखिक परीक्षा में भी भाग लेता हो, सामान्यतया स्वीकार की जाती है। फिर भी ऐसे मामले भी हैं जहां उसकी सलाह की उपेक्षा की गयी है। उच्चतम न्यायालय ने इसका विरोध किया है और कहा है कि इस प्रकार का व्यवहार वांछनीय नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार की कार्य के प्रति अपना विरोध प्रकट किया और इसकी सराहना नहीं की है[1]। न्यायालय ने संस्तुति की कि जब न्यायिक सेवाओं के लिये चयन किये जाते हैं तो उस राज्य के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नामित उच्च न्यायालय का एक वर्तमान न्यायाधीश को विशेषज्ञ का कार्य करने के लिये साक्षात्कार में आमंत्रित किया जाना चाहिये और चूंकि यह वर्तमान न्यायाधीश विशेषज्ञ के रूप में स्थान ग्रहण करता है और उच्च न्यायालय में कार्यरत होने के कारण साक्षात्कार के लिये आने वाले अभ्यर्थियों के गुण और चरित्र से परिचित होता है। अतः उसके द्वारा दी गई सलाह साधारणतया स्वीकार की जानी चाहिये जब तक इस प्रकार की सलाह को स्वीकार करने के कोई वैध और उचित कारण न हों। ऐसे वैध और उचित कारण लोक सेवा आयोग के चेयरमैन और सदस्यों द्वारा लिखित रूप में, दर्ज किये जाने चाहिये। उच्चतम न्यायालय ने प्रत्येक राज्य के लोक सेवा आयोग को यह निर्देश दिया है कि सर्वोत्तम प्रतिभा ही न्यायिक सेवा में भर्ती की जानी चाहिये और यह तभी हो सकता है जब वस्तुतः विशेषज्ञ की सेवाएं (उच्च न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश)

1. अशोक कुमार यादव बि० स्टेट आफ हरयाणा (1985) 4 सुप्रीम कोर्ट केसेज 417।

प्रथम वर्ष के पश्चात् उच्च न्यायालय द्वारा संचालित स्थानीय भाषा की परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक होना चाहिये। राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिये दिये जाने वाले अवसरों की संख्या निर्धारित करेगा। ये सीधे भर्ती किये हुये लोग जो अपर/कनिष्ट वेतनमान में कार्य कर रहे हैं, उनको चार वर्ष पश्चात् वरिष्ट वेतनमान के लिये प्रोन्नत कर दिया जाना चाहिये।

वरिष्ठता

5.11 भारतीय न्यायिक सेवा के सदस्यों की आपस में वरिष्ठता निश्चित करने के विस्तृत नियम राष्ट्रीय न्यायिक सेवा द्वारा सामान्यतः स्वीकार न्यायिक सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर निर्मित किये जाने चाहिये। कुछ मुख्य न्यायाधीशों का सुझाव था कि प्रारंभिक संरचना के समय नियुक्त किये सदस्यों की वरिष्ठता राज्य न्यायिक सेवा में प्रवेश के समय के अनुसार निर्धारित किया जाना चाहिये चाहे इनकी नियुक्ति तदर्थ, अस्थायी अथवा स्थानापन्न में कार्य करने की निरन्तरता के नियम के अधीन की गई हो यह सुझाव अनेक क्षेत्रों पर लागू नहीं होता है। यह सुझाव इस धारणा पर आधारित है कि भारतीय न्यायिक सेवा में राज्य स्तर के ही अधिकारी रहेंगे। अखिल भारतीय सेवा के अर्थ हैं कि इसकी अखिल भारतीय वरिष्टता भी होगी। परस्पर वरिष्टता को शासित करने वाले नियमों की रूप-रेखा कुछ इस प्रकार जैसा इंगित किया जा रहा है, हो सकती है :—

(1) सेवा के सृजन के समय राज्य न्यायिक सेवा के सदस्यों जो भारतीय न्यायिक सेवा के सदस्य हो चुके हैं, की पारस्परिक वरिष्टता को बिना किसी व्यवधान बनाये रखा जाना चाहिये।

(2) सेवा के प्रारम्भ में सृजन के समय अनेक राज्यों के न्यायिक सेवाओं से आने वाले सदस्यों जो भारतीय न्यायिक सेवा के सदस्य हो गये हैं, का एकीकरण, करते समय परस्पर वरिष्ठता का विनियमन पद पर नियुक्त होने की उस तिथि से होना चाहिये जिस तिथि से वे भारतीय सेवा न्यायिक सेवा के सदस्य हुये। यह भी कार्य करने की निरन्तरता के नियम के अधीन होना चाहिए।

(3) ऐसे व्यक्ति जो स्थानापन्न पद पर कार्य कर रहे हैं और जो भारतीय न्यायिक सेवा के प्रारम्भ के दिन अन्तर्विष्ट कर लिये गये हैं उसी दिन से उनकी परस्पर वरिष्टता आयु के अनुसार निर्धारित होगी। आयु में अधिक, कम आयु वाले से वरिष्ठ होगा। इस स्थिति में समानता होने पर राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग परस्पर वरिष्ठता के नियम बनायेगा।

(4) बार के वरिष्ठ और अनुभवी सदस्यों में से सीधे भर्ती द्वारा नियुक्त व्यक्ति प्रोन्नति किये गये और सीधे भर्ती किये गये सदस्यों से सदैव वरिष्ठ रहेंगे। उनकी वरिष्टता राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग द्वारा निर्धारित की गई योग्यता सूची के अनुसार होगी।

(5) राज्य न्यायिक सेवा से प्रोन्नत व्यक्तियों की वरिष्टता राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग द्वारा चयन सूची में निर्धारित स्थान और योग्यता सूची के अनुसार होगी जो उनका नियोजन योग्यता के अनुसार करेगा। दो व्यक्तियों की समानता होने पर राज्य न्यायिक सेवा में प्रवेश की तिथि से वरिष्ठता होगी और यदि यह तिथि भी समान है तो उनकी आयु वरिष्टता के निर्धारण में प्रमुख तत्व होगा; और

वेतनमान

5.9 इस सेवा में दो वेतनमान होंगे एक वरिष्ठ और दूसरा कनिष्ठ

(क) वरिष्ठ वेतनमान—निम्नलिखित पदों पर नियुक्त व्यक्ति वरिष्ठ वेतनमान के अधिकारी होंगे :—

(1) जिला और सेशन न्यायाधीश;

(2) संयुक्त/अपर जिला और सेशन न्यायाधीश; और

(3) (क) नगर सिविल न्यायालय का मुख्य/प्रमुख न्यायाधीश,
(ख) नगर सिविल न्यायालय का अपर मुख्य/अपर प्रमुख न्यायाधीश,
(ग) सिविल न्यायालय का न्यायाधीश।

(ख) कनिष्ठ वेतनमान निम्नलिखित पदों पर नियुक्त व्यक्ति कनिष्ट वेतनमान प्राप्त करेंगे:—

(i) सहायक न्यायाधीश और सहायक सेशन न्यायाधीश;
(ii) मुख्य/अपर मुख्य महानगरीय मजिस्ट्रेट; और
(iii) लघु वाद न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश,

प्रतियोगी परीक्षा के परिणामस्वरूप भारतीय न्यायिक सेवा के लिये भर्ती किये जाने वाले सभी व्यक्ति प्रारम्भ में कनिष्ठ वेतनमान में नियुक्त किये जायेंगे। राज्य न्यायिक सेवाओं में प्रोन्नति के फलस्वरूप और उच्च न्यायालय की संस्तुति के फलस्वरूप बार के वरिष्ठ और अनुभवी सदस्यों में से सीधे भारतीय न्यायिक सेवा में भर्ती किये जाने वाले लोग वरिष्ठ वेतन में नियुक्त किये जायेंगे।

राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग भारतीय न्यायिक सेवा के सदस्यों के लिये वरिष्ठ और कनिष्ठ वेतनमानों का निर्धारण भारतीय प्रशासनिक सेवा के तुलनात्मक वेतनमानों को ध्यान में रख कर करेगा। किसी भी दशा में इन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवा या केन्द्रीय सिविल सेवा श्रेणी I के वेतनमान, जो भी ऊंची हों, से कम नहीं होना चाहिये।

प्रारम्भिक नियुक्ति

5.10 प्रतियोगी परीक्षा के परिणामस्वरूप भारतीय न्यायिक सेवा में भर्ती किये जाने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण के लिए विस्तृत स्कीम यद्यपि एक दूसरी रिपोर्ट में जो इस रिपोर्ट के तुरन्त पश्चात दी जाएगी, (यह रिपोर्ट कार्य करने की पद्धति, निर्णय देने की प्रक्रिया जिससे न्यायिक कार्य के प्रत्येक स्तर पर यहां तक कि जिला और सेशन न्यायाधीश के स्तर तक उन्हें कार्यक्षम बना सके—के संबंध में होगी) निर्धारित की जा रही है। यह आवश्यक है कि पूर्व प्रशिक्षण के पूर्ण होने पर सेवा के लिये सीधे भर्ती व्यक्ति को क्रमानुसार नियुक्त किया जाय और उसे निम्नभांति कार्य करना आवश्यक हो :—

(1) प्रथम नियुक्ति मुंसिफ/सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ विभाग) और न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में दो वर्षों के लिये की जानी चाहिये।

(2) दूसरे स्तर पर उनकी नियुक्ति सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ विभाग)/महानगरीय मजिस्ट्रेट या लघु वाद न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में दो वर्षों के लिये की जानी चाहिये; और

(3) तत्पश्चात् उनकी नियुक्ति सहायक/अपर न्यायाधीश और अपर/सहायक सेशन न्यायाधीश/मुख्य महानगरीय मजिस्ट्रेट/लघुवाद न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के लिये तीन वर्षों के लिये की जानी चाहिये,

न्यायालय में जिसके अधीन परिवीक्षी नियुक्त था और कार्य किया था, निर्णय पर पहुचने के लिये प्रत्येक जानकारी को प्राप्त करे।

प्रशिक्षण

5.13 न्यायिक सुधारों के अध्ययन के संदर्भ में विचारणीय विषयों में से विषय सं० 5 विधि आयोग से यह अपेक्षा करता है कि वह न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिये पाठ्यक्रम निर्धारित करे। विधि आयोग को आशा है कि ठीक इस रिपोर्ट के पश्चात् न्यायिक अधिकारियों की सेवा पूर्व और सेवाकाल के मध्य प्रशिक्षण के प्रश्न पर अपनी विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। अतः न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण की वर्तमान रूपरेखा उस रिपोर्ट के साथ देखी जानी चाहिये जिसे शीघ्र ही विधि आयोग प्रस्तुत करेगा। इसी बीच भारत सरकार के विधि और न्याय मंत्रालय ने विधि आयोग को भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिये अकादमी की स्थापना की रूपरेखा उसके विचारार्थ और मत जानने के लिये अग्रेषित किया है। उस पक्ष पर भी इस रिपोर्ट में विचार किया जा रहा है।

1958 में ही विधि आयोग ने सिविल जस्टिस कमेटी के कथन का अनुमोदन करते हुये कहा था[1] कि मुंसिफ को अपने मुन्सरिम अथवा पेशकार के प्रभाव में होने की अवांछनीय प्रवृत्ति से बचाने के लिये यह आवश्यक है कि इस सेवा में नये प्रवेश लेने वालों का सेवा पूर्व प्रशिक्षण हो। न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण की स्कीम ऐसी हो जिससे परिवीक्षी अपने को (क) वास्तविक सिविल और दांडिक विचारण, (ख) माल के कार्य, (ग) मुकदमों की सुनवाई और (घ) प्रशासनिक कार्य से परिचित करा सके। उन्हें वरिष्ठ जिला और सेशन न्यायाधीश के अधीन कर दिया जाना चाहिये जिसका यह कर्तव्य होगा कि वह प्रशिक्षण काल में उनका मार्ग दर्शन करे और उनके कार्य की रिपोर्ट भी भेजे[2]। विधि आयोग ने करिब दो दशकों के पश्चात् 1978 में फिर से अपनी बात दुहरायी कि न्यायिक अधिकारियों को सभी प्रकार की स्थितियों का न्यायालय में सामना करना होता है---ये स्थिति कभी-कभी रुकावट पैदा करने वाले तथा झगड़ालू वादकारियों से और कभी-कभी दबंग और लड़ाकू वकीलों के द्वारा उत्पन्न की जाती है। न्यायिक अधिकारी इस प्रकार की स्थितियों से निबट सकें और अपना उत्तरदायित्व ठीक ढंग से निभा सके यह आवश्यक है कि न्यायिक अधिकारियों की कार्य भार संभालने के पूर्व---प्रशिक्षण का एक पाठ्यक्रम हो[3]। प्रशिक्षण का पैटर्न और समयावधि यह ध्यान में रख कर निर्धारित किया गया था कि मूल स्थान के लिये की गई भर्ती के लिये बार में कम से कम तीन वर्षों का अनुभव आवश्यक था। भारतीय न्यायिक सेवा के सृजन की संस्तुति करते हुये यह साहसिक पग उठाया जा रहा है कि न्यायिक अधिकारी होने के लिये बार के तीन वर्षों का अनुभव प्राप्त करने की आवश्यकता को ही समाप्त किया जा रहा है। अब चूंकि नया विधि स्नातक प्रतियोगी परीक्षा में अर्हता प्राप्त करने के पश्चात् न्यायिक सेवा में प्रवेश ले रहा है अतः पूर्व सेवा प्रशिक्षण का पैटर्न का दोनों विषय और अवधि के संबंध में---महत्व अत्याधिक हो जाता है। यह प्रशिक्षण कम से कम दो वर्षों के लिये होना चाहिये। इसमें से एक वर्ष तदर्थ स्थापित की जाने वाली अकादमी में प्रशिक्षण के लिये और एक वर्ष मुंसिफ सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ विभाग) या न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के न्यायालय में तीन माह बैठाकर सिविल न्यायाधीश (वरीष्ठ विभाग) के साथ तीन माह बैठकर, मुख्य महानगरीय मजिस्ट्रेट के साथ दो माह बैठाकर, लघु वाद न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के साथ दो माह

---

1. भारत का विधि आयोग---चौदहवीं रिपोर्ट, भाग 1 अध्याय 9 अनुच्छेद 42 पृष्ठ 178।

2. भारत का विधि आयोग---चौदहवीं रिपोर्ट, भाग 1 अध्याय 9 अनुच्छेद 44 पृष्ठ 179।

3. भारत का विधि आयोग सतहत्तरवीं रिपोर्ट, अध्याय 13 अनुच्छेद 13-2 पृष्ठ 46।

(6) किसी भी एक वर्ष में प्रतियोगी परीक्षा के परिणामस्वरूप भर्ती व्यक्ति उस वर्ष राज्य न्यायिक सेवा से प्रोन्नत किये गये व्यक्तियों से कनिष्ट माने जायेंगे।

वरिष्ठता को निर्धारित करने वाले सिद्धान्तों का मोटे तौर पर उल्लेख करने के पश्चात् और परस्पर वरिष्ठता के निर्धारण के विस्तृत नियमों को बनाने का कार्य प्रस्तावित राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग पर छोड़कर, यह इंगित करना उचित ही होगा कि ये नियम ए० जनार्दन वि० यूनियन आफ इंडिया,[1] वी० एस० मेहल वि० यूनियन आफ इंडिया,[2] ओ०पी० सिंधल वि० यूनियन आफ इंडिया,[3] जी०ए० लाम्बा वि० यूनियन आफ इंडिया[4] और अभी हाल में निर्णीत चड्डा वि० यूनियन आफ इंडिया और अन्य[5] में दिये निर्णयों के अनुसार होने चाहिये। इन निर्णयों में कहा गया है कि यदि सेवा की आवश्यकतायें बाध्यकारी न हों तो ऐसे व्यक्ति जो पहले से सेवा में हैं चाहें वे काडर में प्रोन्नत होकर ही पहुंचे हों, जिसमें सीधे भर्ती किया गया व्यक्ति बाद में आता है, प्रोन्नत व्यक्ति को सीधे भर्ती किये गये व्यक्ति से नीचे नहीं डाला जाना चाहिये। ऐसे मामले भी प्रकाश में आये हैं जब काडर में नियमतः प्रोन्नत किये गये व्यक्ति को अपनी वरिष्ठता नियमों के अन्यायपूर्ण और असमानतापूर्ण अर्थ लगाने के कारण बाद में सीधे भर्ती उस व्यक्ति को व्यैक्तिक सेवा जो प्रोन्नति व्यक्ति के सेवा में आने के समय पाठशाला में ही रहा हो समर्पित कर देनी पड़ी हो। यह बात सार रूप में निर्दिष्ट की गई कि अब समय आ गया है जब सेवाओं का न्याय शास्त्र अधिक न्यायपूर्ण और साम्यापूर्ण आधारों पर फिर से निर्मित किया जाना चाहिये। प्रस्तावित भारतीय न्यायिक सेवा के नियमों की रचना करते समय उन्हीं गलतियों को दुहराने से बचना चाहिये।

परिवीक्षा

5.12 भारतीय न्यायिक सेवा के लिये भर्ती व्यक्ति चाहे वह प्रतियोगी परीक्षा के परिणामस्वरूप सीधे आया हो अथवा राज्य न्यायिक सेवा से प्रोन्नत होकर आया हो दो वर्षों के लिये परिवीक्षा पर रखा जायेगा। बार के अनुभवी और वरिष्ठ सदस्यों में से भर्ती के मामले में उसका परिवीक्षा काल एक वर्ष से अधिक का नहीं होना चाहिये। राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग को यह छूट होगी कि उस उच्च न्यायलय की रिपोर्ट पर जिसके अधीन वह व्यक्ति कार्य कर रहा है, दो वर्षों के लिये परिवीक्षा काल बढ़ा दे किन्तु यह काल दो वर्षों से अधिक का नहीं होना चाहिये।

कोई भी परिवीक्षाधीन व्यक्ति सेवा से मुक्त या मूल पद को प्रत्यावर्तित किया जा सकता है यदि :—

(1) प्रशिक्षण पूरा होने पर वह कोई भी विभागीय परीक्षा निर्धारित प्रयासों के बाद और बढ़ाये गये परिवीक्षण काल के समाप्त होने पर उत्तीर्ण करने में सफल नहीं होता है; या

(2) जिस उच्च न्यायालय के अधीन उसकी नियुक्ति हुई है उसकी इस रिपोर्ट पर कि परिवीक्षी के चरित्र और निष्ठा में कमी है अथवा न्यायिक अधिकारी के अनुरूप उसका व्यवहार नहीं है अथवा उस पद के भार के निर्वाह करने में सर्वथा अक्षम है।

परिवीक्षी राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग की संस्तुति पर राष्ट्रपति के आदेश से सेवा मुक्त किया जायगा। राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग को यह अधिकार होगा कि वह उस उच्च

---

1. (1983) 3 एस.सी.सी. 601।
2. (1984) 4 एस.सी.सी. 545।
3. (1984) 4 एस.सी.सी. 450।
4. (1985) 2 एस.सी.सी. 604।
5. (1986) 2 एस.सी.सी. 157।

अनुच्छेद में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जब भी लोक सेवा आयोग न्यायिक सेवा के अभ्यर्थियों की संस्तुति करने का कार्य लें यह आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय के किसी वर्तमान न्यायाधीश को विशेषज्ञ के रूप में साक्षात्कार में आने वाले अभ्यर्थियों के चरित्र और गुण को परखने के लिये आमंत्रित किया जाना चाहिये और उसकी दी हुयी सलाह को साधारणतया स्वीकार किया जाना चाहिये, जब तक कि उसकी सलाह मानने के दृढ़ और उचित कारण न हों, और ऐसे कारण लोक सेवा आयोग के चेयरमैन और सदस्यों द्वारा लिखित रूप में दिये न गये हों। 1958 से प्रारम्भ और दिखाई पड़ी सड़न आगे और भी अधिक गंभीर हो गई है जैसा पूर्वोक्त कथनों से स्पष्ट है। अतः समय आ गया है जब न्यायिक सेवा में विशेषज्ञों का संघठन मूल स्थान से लेकर उच्चतम स्थान तक की न्यायिक सेवाओं का सृजन, भर्ती और संचालन करने के लिये बनाया जाय। इस बारे में एक विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करना विधि आयोग के कार्यक्रम में है क्योंकि मुकदमों के निपटान में देरी के प्रश्न का विभिन्न दृष्टियों से परीक्षण से करते हुये इसकी दृष्टि में उच्च न्यायालयों और उच्च न्यायालय में नियुक्तियों में की जाने वाली देरी भी थी। इन नियुक्तियों में तीन वर्ष से लेकर (आंध्र प्रदेश) में और एक वर्ष तक की देरी उच्च न्यायालय में और करीब दस माह तक की देरी उच्चतम न्यायालय में होती है। नियुक्तियों में देरी होने के कारण अनेक हो सकते हैं किन्तु इसका परिणाम न्यायालयों द्वारा वादों और विवादों को निपटाने में देरी में ही होता है, जिससे बकाया वादों की संख्या बढ़ती ही जाती है। यह प्रस्तावित अलग रिपोर्ट का विषय होगा जिसमें विस्तृत चर्चा की जाएगी।

अब चूंकि अखिल भारतीय स्तर पर न्यायिक सेवा प्रस्तावित और संस्तुत की जा रही है यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग का भी सृजन किया जाय। इसके सृजन के पीछे कारण, संरचना शक्ति कार्य और कर्तव्यों की विस्तार पूर्वक चर्चा अलग रिपोर्ट में की जाएगी जो इसी संबंध में होगी। सामान्य रूप से इसमें सदा अवकाश प्राप्त भारत के उच्चतम न्यायायल के मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय के ही एक या दो न्यायाधीश तीन से पांच तक भारत के उच्च न्यायालयों के अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायाधीश बार के एक या दो प्रमुख सदस्य, भारत की बार कौंसिल के सभापति और दो या तीन प्रमुख विधि शास्त्री होने चाहिये इस संघठन का गठन भारत के राष्ट्रपति द्वारा किया जाना चाहिये।

बैठकर प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये। शेष तीन माह में जिला न्यायाधीश के साथ मुख्य प्रशासनिक कार्यालय में सीधे जिला और सेशन न्यायाधीश की देखरेख में रखकर प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।

अकादमी में एक वर्ष में दिया जाने वाला प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम बाद में दी जा रही रिपोर्ट में होगा। यह पाठ्यक्रम मुकदमों के आधार पर प्रस्तुत किया जायेगा।

सेवा काल में पांच वर्षों के अन्तराल के पश्चात् तीन से छः सप्ताह तक के लिये प्रशिक्षण की व्यवस्था करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना पूर्व प्रशिक्षण। इस सेवा काल में प्रशिक्षण का औचित्य भी प्रस्तावित रिपोर्ट में बताया जायेगा। यहां उल्लेख करना पुनरावृत्ति मात्र होगा।

यह सुनिश्चित करने के लिये कि प्रशिक्षु ने प्रशिक्षण काल का पूरा उपयोग किया है, जिसमें यह कनिष्ठ वेतनमान भी प्राप्त करेगा, राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग द्वारा संचालित उसे एक विभागीय परीक्षा भी उत्तीर्ण करनी होगी।

न्यायिक सेवा के सम्पूर्ण दायित्व के लिये शीर्षस्थ संगठन

5.14. न्यायिक सेवा तथा कथित सेवा नहीं है। यह जीवन दृष्टि है। न्यायाधीशों के लिये एक आदर का भाव होता था, क्योंकि न्याय का आसन ईश्वर का आसन कहा जाता था। न्यायिक सेवा के लिये विशेषज्ञों का कोई शीर्षस्थ संगठन इनकी समस्याओं के निपटारे के लिये नहीं होता था। भारत के उच्चतम न्यायालय का उच्च न्यायालयों पर पर्यवेक्षण का कोई अधिकार नहीं था। प्रत्येक उच्च न्यायालय का अपने राज्य की समस्याओं से लेना देना होता है। स्थानीय विवाद ही इसमें होते हैं। इसका भद्दा रूप अब कुछ समय से क्षेत्रवाद अलगाववाद और किन्हीं-किन्हीं मामलों में संकुचित जातिवाद के रूप में सिर उठाने लगा है, जिससे न्यायिक सेवाओं के स्तर, गरिमा और विश्वसनीयता में कमी आई है। इस प्रकार की प्रवृत्तियों को रोकने के लिये विधि और न्याय मंत्रालय ने 1982 में एक नीतिगत निर्णय लिया कि प्रत्येक उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश उसकी अधिकारिता के बाहर होगा। यह नीति यदा कदा क्रियान्वित की जा रही है। ऐसा कहा गया है कि इस नीति से राष्ट्रीय एकात्मता को बढ़ावा मिलेगा, अलगाववादी और क्षेत्रीयवादी प्रवृत्तियों की रोक होगी और इससे न्यायिक सेवा में स्वस्थ प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलेगा। बाहर से आने वाले व्यक्ति स्थानीय धारणाओं और स्थानीय अवांछनीय वातावरण से मुक्त होंगे।

संविधान के करीब 35 वर्षों के क्रियान्वयन के अनुभव ने संविधान के कुछ उपबंधों की आधारभूत उपधारणाओं को बहुत बड़े अंश में गलत सिद्ध कर दिया है। उदाहरण के लिये अनुच्छेद 233 जिसके अधीन जिला न्यायाधीश के स्तर से नीचे अधीनस्थ न्याय-पालिका के पदों के लिये अभ्यर्थियों की संस्तुति की जाती रहती है। राज्य लोक सेवा आयोग ने सामान्यतया अपनी विश्वनीयता खो दी है---यह कहने के लिये किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है। बहुत पहले 1958 में ही विधि आयोग ने कहा था कि कुछ राज्यों के लोक सेवा आयोग के सदस्यों द्वारा दिये गये साक्ष्यों से यह धारणा बनती है कि वे उस पद पर बने रहने योग्य नहीं हैं, जहां वे बैठे हैं। दक्षिण के कुछ राज्यों में न्यायिक सेवाओं में चयन करने के लिये आयोगों की पक्षपात हीनता पर गंभीर प्रश्न चिह्न लगाया गया था[1]। अभी हाल में अशोक कुमार यादव[2] में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि हरियाणा राज्य सेवा आयोग के चेयरमैन और सदस्यों की नियुक्ति शुद्धतः राजनैतिक और जातीय पक्षपात के आधार पर की गई है और ये उच्च श्रेणी की निष्ठा, ईमानदारी और योग्यता के परीक्षण पर भी खरे लोग नहीं हैं। इसमें संदेह नहीं है कि उच्चतम न्यायालय ने इन आक्षेपों का अनुमोदन नहीं किया किन्तु अपने निर्णय के अन्तिम

---

1. भारत का विधि आयोग---14वीं रिपोर्ट भाग---1 अध्याय 1 अनुच्छेद 27 पृष्ठ 171।

2. अशोक कुमार यादव वि० स्टेट आफ हरियाणा, (1985) 4 सु०को० केसेस 417।

सृजन करते समय प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 की धारा 2 में विनिर्दिष्ट उपबंध किया जावेगा कि प्रशासनिक अधिकरण की इस सेवा पर कोई न्यायाधिकारिता नहीं होगी। इस विनिर्दिष्ट वर्णनात्मक उपबंध के न होने पर भी उच्चतम न्यायालय ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता से संबंधित संविधान के अनेक उपबंधों को ध्यान में रखकर, आंध्र प्रदेश प्रशासनिक अधिकरण को अधीनस्थ न्यायपालिका और उच्च न्यायालय के कर्मियों पर न्यायाधिकार देना अस्वीकार कर दिया[1]।

अतः मामले के सभी पक्षों को ध्यान में रखकर और राज्य न्यायिक सेवाओं पर हानिकर प्रभावों को देखते हुये यह उपयुक्त समय है कि एक अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का सृजन किया जाय। तदनुसार ही यह संस्तुति की जाती है।

ह०
(डा० ए० देसाई)
चेयरमैन

ह०
(एस०सी० घोष)
सदस्य

ह०
(वी०एस० रमा देवी)
सदस्य सचिव

नई दिल्ली दि० 27 नवम्बर, 1986

---

1. चीफ जस्टिस आंध्र हाई कोर्ट वि० एल०वी०ए० दीक्षितुलु ए०आई०आर० 1979 एस० सी० 193।

MGIPCBE S-7—2 M of L & J/87—6-6-88—210.

अध्याय 6

कठिनाइयों का निराकरण

6.1 भारतीय न्यायिक सेवा की परिकल्पना संरचना और सृजन से संबद्ध पक्षों की चर्चा करते हुये, आशंकाओं के अतिरिक्त यह गंभीरता पूर्वक अनुभव किया गया कि इस स्कीम के क्रियान्वयन में गंभीर कठिनाइयों का सामना करना होगा। अतः यह अच्छा होगा कि स्थिति में बिना व्यवधान डाले छोड़ दिया जाय। यदि संभावित कठिनाइयों के डर के कारण परिवर्तन के प्रयास न किये जायें तो परिवर्तन संभव ही नहीं है। वर्तमान स्थिति वास्तव में निराशाजनक और क्षोभजनक है। यदि यह कहा जाय कि समस्या का कोई भी हल नहीं है तो हम स्वीकार करते हैं कि हमारे पास न तो प्रतिभा है और न बुद्धि जिसके द्वारा परिवर्तन और नवीनता लायी जाय। प्रत्येक परिवर्तन में कुछ कठिनाइयां होती ही हैं। उनका निराकरण होना ही चाहिये। उन्हें प्रगति के रास्ते में बाधा बने नहीं रहने देना होगा।

6.2 पहली आशंकित कठिनाई आयु के कारण होगी जिसके कारण भर्ती के तीन स्वतंत्र, श्रोतों में से लोगों को लेने से संभवतः असंतुलन उत्पन्न होगा और जिससे कुंठा और निराशा होगी। यह समस्या को बहुत ऊपर से ही देखने का परिणाम है। यदि कोई व्यक्ति राज्य सेवा में 25 और 30 वर्ष की आयु में प्रवेश लेता है और यह आशा करता है कि उसे प्रत्येक वर्ष प्रोन्नति मिलने से वह भारतीय न्यायिक सेवा में आ जायगा तो उसकी आयु 32 वर्ष से 37 वर्ष तक मध्य सेवा में प्रवेश के समय होगी। बार का कोई भी सदस्य जिसका 10 वर्ष का विधि व्यवसाय है वह भी इसी आयु में सेवा में प्रवेश लेगा। एक व्यक्ति यदि सेवा में सीधे भर्ती प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से होता है तो उसकी आयु 23 वर्ष से 25 वर्ष के मध्य होगी। उसे दो वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त करना होगा। उसके पश्चात उसे सात वर्ष तक विभिन्न स्तरों पर कार्य करना होगा जिससे वह जिला न्यायाधीश के पद के योग्य हो सके। वह उसी आयु वर्ग में थोड़ी बहुत अन्तर के साथ होगा जो सेवा में आज भी विद्यमान है। यही प्रतियोगिता का वास्तविक स्तर होगा जहां से वह उच्च न्यायालय के पीठ में स्थान पाने के लिये प्रयत्नशील होगा। सभी को समान अवसर प्राप्त होंगे। यह कठिनाई काल्पनिक अधिक है, वास्तविक नहीं।

दो दृष्टांत इस मुद्दे पर चिन्ता को समाप्त करने के लिये पर्याप्त होने चाहिये। सबसे निचले स्तर पर मुंसिफ अथवा सिविल जज के रूप में सेवा में आने वाले लोगों के विदित दृष्टांत हमारे सामने हैं जो भारत के उच्चतम न्यायालय तक प्रोन्नत हुये। दो अन्य ऐसे उदाहरण हमारे सामने हैं जो जिला न्यायाधीश के रूप में बार से भर्ती किये गये और उच्चतम न्यायालय से पहुंचे और अन्य दो जो जिला सिविल न्यायालय के न्यायाधीश थे, जो उच्चतम न्यायालय में प्रोन्नत हुये। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में चयन होने के लिये प्रतिभा की प्रथम आवश्यकता होती है, आयु का तत्व दूसरे स्थान पर होता है। अतः आयोग इस कठिनाइ को यथार्थ न मानकर अस्वीकार करता है।

6.3 प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 के अधीन प्रशासनिक अधिकारियों की स्थापना को न्यायिक अधिकारियों के कई संघों ने न्यायिक सेवाओं में हस्तक्षेप करने का सूक्ष्म तरीका समझा था। उनका कहना था कि भारतीय न्यायिक सेवा की स्थापना के समय से ही राष्ट्रपति को उसी प्रकार की शक्ति प्राप्त हो जाएगी जैसी शक्ति उसे अन्य अखिल भारतीय सेवाओं के संबंध में प्राप्त है। यह सेवा भी केन्द्रीय सरकार की सेवा हो जाएगी। परिणामतः प्रशासनिक अधिकरण अपनी न्यायाधिकारिता का प्रयोग इस तरह करेंगे जिससे न्याय पालिका की स्वतंत्रता का ह्रास नहीं होगा। अपितु उच्च न्यायालयों का नियंत्रण भी ह्रास करने वाला होगा, उच्च न्यायालय के नियंत्रण का जहां तक संबंध है इस बात को ध्यान में रखा गया है कि यह किसी प्रकार समाप्त नहीं किया जा सके। इस सेवा का